मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 34 ● वर्ष 4 ● अंक 6 ● अगस्त 2014 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

# मज़दूर बिगुल

शिक्षा और संस्कृति के भगवाकरण का एजेण्डा – जनता को ग़ुलामी में जकड़े रखने की साज़िश 9

इज़रायली बर्बरता की कहानी – एक डाक्टर की ज़ुबानी 7

15 अगस्त के अवसर पर मण्टो की कहानी 'नया क़ानून' 14–15

# श्रम कानूनों में "सुधार" : मोदी सरकार का मज़दूरों के अधिकारों पर ख़तरनाक हमला

## सारी केन्द्रीय यूनियनें हमेशा की तरह बस गाल बजा रही हैं, मज़दूरों को संगठित प्रतिरोध के लिए तैयार होना ही होगा!

**सम्पादक मण्डल**

मोदी-सरकार के 'अच्छे दिनों'' की कलई धीरे-धीरे खुल रही है। लोकसभा चुनावों से पहले जब नरेन्द्र मोदी और भारतीय जनता पार्टी द्वारा ''अच्छे दिन आने वाले हैं! मोदी जी आने वाले हैं।'' का प्रचार खूब ज़ोरों-शोरों से किया जा रहा था, तब यह नहीं बताया जा रहा था कि ये ''अच्छे दिन'' किसके लिए आने वाले हैं। लेकिन तीन महीने के भीतर ही मोदी सरकार के ''अच्छे दिनों'' का रहस्य सबके सामने आ गया है। यह तो खैर होना ही था। आख़िर भारत के जिन पूँजीपति घरानों, धन्ना-सेठों और मालिकों-ठेकेदारों की लॉबी ने मोदी के प्रचार अभियान पर जो हजारों करोड़ रुपए पानी की तरह बहाये थे, उसे जल्द से जल्द सूद समेत पूँजीपतियों-मालिकों की तिजोरियों में तो वापस पहुँचाना ही था। इसलिए पहले रेल बजट और फिर केन्द्रीय बजट के द्वारा मोदी सरकार ने साबित कर दिया कि उसके ''अच्छे दिनों'' का मतलब तो सिर्फ़ अमीरजादों के ''अच्छे दिनों'' से था। देश की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी के लिए तो या बद से बदत्तर होते दिनों की शुरुआत है। इस दिशा में मोदी सरकार ने जो सबसे पहला और सबसे बड़ा कदम उठाया है वह है मज़दूर वर्ग के कानूनी हकों पर हमला।

अभी तीन महीने भी नहीं हुए हैं मोदी सरकार को आये हुए लेकिन आते ही उसने घोषणा कर दी कि श्रम-कानूनों में बड़े बदलाव किये जाएँगे। स्पष्ट है देशी-विदेशी कॉरपोरेट घरानों और पूँजीपतियों के मुनाफे का घोड़ा बेलगाम दौड़ता रहे, इसके लिए ज़रूरी है कि उनके राह के सबसे बड़े रोड़े को यानी कि रहे-सहे श्रम-कानूनों को भी किनारे लगा दिया जाये। इसका मतलब है कि मज़दूरों को श्रम-कानूनों के तहत कम-से-कम काग़ज़ी तौर पर जो हक़ हासिल हैं अब वे भी छीन लिये जाएँगे।

वहीं दूसरी सच्चाई यह है कि मौजूदा श्रम-कानून पहले से ही बहुत कमज़ोर और निष्क्रिय है। 1990 के बाद से उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों की शुरुआत के साथ ही श्रम-कानूनों को ''लचीला'' करने का अन्तहीन सिलसिला भी शुरू हो गया। इस ''लचीलेपन'' का मतलब और कुछ नहीं बल्कि कानूनों को और कमज़ोर और ढीला-पोला करना था और मज़दूरों की मेहनत की अन्धी लूट को कानूनी जामा पहनाना था। मज़दूरों के पक्ष में जो बचे-खुचे कानून रह गये हैं वे भी ज़्यादातर सरकारी कागज़ों की ही शोभा बढ़ाते हैं। देश की 93 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए इन कानूनों का तो पहले से ही कोई मतलब नहीं रह गया है। इन मज़दूरों को न तो कानून के तहत मिलने वाली न्यूनतम मज़दूरी ही मिलती है, न आठ घण्टे के कार्य दिवस, डबल रेट से ओवर टाइम और ईएसआई व पीएफ का अधिकार ही प्राप्त है। दूसरी ओर, पहले से ही लचर श्रम-कानूनों को लागू करने की ज़िम्मेदारी रखने वाले श्रम-विभाग की हालत खुद खस्ताहाल है। श्रम-कानूनों के खुले उल्लंघन पर भी यह कुछ नहीं कर पाता। ज़्यादातर मामलों में तो फैक्टरी इंस्पेक्टरों / लेबर इंस्पेक्टरों को मालिक और ठेकेदार अपनी जेब में लेकर घूमते हैं। लेकिन इन सबके बावजूद जहाँ कहीं मज़दूर संगठित होकर इन कानूनों को लागू करवाने के लिए संघर्ष करते है, वहाँ मालिकों और प्रबन्धन को कुछ दिक्कतें ज़रूर पेश आती है। इसलिए मोदी सरकार ने आते ही पूँजीपतियों की लूट के रास्ते में कुछ बाधा पैदा करने वाले श्रम-कानूनों को ख़त्म करने का काम मुस्तैदी से शुरू कर दिया है।

### श्रम कानूनों में ''सुधार'' के नाम पर मोदी सरकार का श्रम-कानूनों पर हमला

मोदी सरकार ने अपने पहले 100 दिन के एजेण्डे में श्रम-कानूनों में बदलाव को अपनी पहली प्राथमिकताओं में से एक बताया था। यह कहा गया था कि इस देश के श्रम-कानून पुराने पड़ चुके हैं और उन्हें बदलने का वक्त आ चुका है। इसके बाद एसोचेम, फिक्की से लेकर सीआईआई जैसी पूँजीपतियों की संस्थाओं ने अपने सबसे वफादार सिपाहसालार मोदी की शान में कसीदे पढ़ डाले! मोदी सरकार ने भी

(पेज 8 पर जारी)

# एक बार फिर देश को दंगों की आग में झोंकने की सुनियोजित साज़िश

उत्तर प्रदेश की बारह विधान सभा सीटों पर जैसे-जैसे उपचुनाव का समय नज़दीक आता जा रहा है, राज्य में साम्प्रदायिक दंगों और तनाव की घटनाएँ भी उसी अनुपात में बढ़ती जा रही हैं। याद रहे कि हाल ही में सम्पन्न 16वीं लोकसभा के चुनाव से पहले 2013 में देश भर में 823 दंगे करवाये गये। इनमें से 247 दंगे सिर्फ़ उत्तर प्रदेश में हुए। हाल ही में मुरादाबाद, सहारनपुर, करैना खरखौदा (मेरठ) लगायत पूरा पश्चिमी उत्तर प्रदेश, अवध (कानपुर, लखनऊ, बाराबंकी), पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बुंदेलखण्ड एक बार फिर इस आग में सुलग रहा है। एक रिपोर्ट के अनुसार 16 मई से 25 जुलाई के बीच उत्तर प्रदेश में 26 दंगों सहित साम्प्रदायिक झगड़ों और तनाव की 605 घटनाएँ हो चुकी हैं। इनमें से ज़्यादातर घटनाएँ उन विधानसभा क्षेत्रों में या उसके आसपास हुई हैं जहाँ उपचुनाव होने हैं। इतने बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक माहौल केवल तभी खराब होता है जब जानबूझकर योजना के तहत इस काम को अंजाम दिया जाये। इधर जो भी सूचनाएँ और रिपोर्टें आ रही हैं उनको देखने से पता चलता है कि संघ, भाजपा, बजरंग दल और विश्व हिंदू परिषद आदि से जुड़े लोगों ने स्थानीय मनमुटाव और विवादों को भड़काने का काम किया। ज़्यादातर जगह सड़क-खड़ंजा संबन्धी विवादों या मंदिरों-मस्जिदों में बजने वाले लाउडस्पीकरों को दंगा भड़काने के लिए इस्तेमाल किया गया। ये ऐसे विवाद थे जिन्हें स्थानीय लोग आपस में बातचीत करके सुलझा सकते थे। दंगा भड़काने के लिए बड़े पैमाने पर झूठी अफ़वाहों का सहारा लिया गया और इसमें इंटरनेट तथा फ़ेसबुक का भी जमकर इस्तेमाल हुआ। सहारनपुर, खरखौदा, पीलीभीत और फूलपुर की घटनाएँ इसका प्रमाण हैं। वैसे भी सभी लोग जान चुके हैं कि पिछले साल मुजफ्फ़रनगर दंगों में भाजपा के नेताओं और उनसे जुड़े लोगों ने एक कई साल पुराना पाकिस्तान का वीडियो दिखाकर जनता को भड़काया था। हैदराबाद में तो बजरंग दल के कार्यकर्ता हिन्दू मंदिरों में गोमांस फेंकते हुए पकड़े जा चुके हैं और कर्नाटक में इसी संगठन के लोगों को पाकिस्तान का झंडा फहराते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया था। एक अंग्रेज़ी दैनिक अख़बार के पत्रकार से बातचीत के दौरान यूपी के एक बड़े पुलिस अधिकारी ने नाम न बताने की शर्त पर कहा कि कुछ लोग चाहते हैं कि तनाव और फ़साद को भड़कने दिया जाये।

अगर हम पिछले साल और इस साल हुए दंगों की ठीक से पड़ताल करें तो इसमें एक स्पष्ट योजनाबद्धता दिखायी देती है। ये दंगे जाट-मुस्लिम, दलित-मुस्लिम और सिख-मुस्लिम समुदायों के बीच नफ़रत पैदा करने की एक सोची-समझी साज़िश का हिस्सा हैं। आर एस एस, विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल के कार्यकर्ता बरसों से यह बेहूदा और झूठा प्रचार करते रहे हैं कि एक दिन मुसलमान जनसंख्या में हिन्दुओं से आगे निकल जाएँगे। पिछले कुछ सालों में इन्होंने 'लव ज़िहाद' नाम का एक और झूठा और ज़हरीला प्रचार शुरू किया है। इनके कार्यकर्ता आम लोगों को यह कहकर बरगला और भड़का रहे हैं कि मुस्लिम युवक हिन्दू लड़कियों को प्यार के जाल में फँसाकर उनसे शादी कर अपनी आबादी को तेज़ी से बढ़ाने का काम कर रहे हैं। हलाँकि सरकारी आँकड़ों, तथ्यों और तर्कों के सामने यह प्रचार कहीं भी नहीं टिकता, लेकिन अपनी मर्दवादी सोच के चलते समाज में लोग इस दुष्प्रचार पर सहज ही यकीन कर लेते हैं। सच तो यह है कि ज़्यादातर हिन्दू और मुस्लिम अपने घर की औरतों को अपने जीवन के महत्वपूर्ण फैसले लेने तक का अधिकार भी नहीं देते हैं। सभी जानते हैं कि जब युवा लड़के-लड़कियाँ जाति-बिरादरी और

(पेज 8 पर जारी)

**बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!**

# आपस की बात

## मज़दूरों को दूसरों के भरोसे रहना छोड़कर खुद पर भरोसा करना होगा!

मेरा नाम खालिद है और मैं जिला सम्भल, उत्तर प्रदेश का रहने वाला हूँ। मैं कई साल से खजूरी में रह रहा हूँ और मैं दिल्ली किराना हाउस,खारी बावली में देशी जड़ी-बूटियों की दुकान में सेल्समैन का काम करता हूँ। मेरा वेतन 7000 रु. है; महँगाई के दौर में इन पैसों की कीमत कुल 700 रु. के बराबर है। मेरे काम में मुझे बैठने का मौका ही नहीं मिलता है। मेरी दुकान छह मंजिला है और हर मंजिल पर बोरियों के ढेर होते हैं और मुझे ये निकालकर देने पड़ते हैं। इस मार्किट में सेल्समैन से लेकर चौकीदार, रिक्शा-ठेले वाले सभी मज़दूर दिन-भर बड़ी मेहनत से काम करते हैं; मगर हमारी मेहनत को बड़ी बेशर्मी से लूटा जा रहा है। यहाँ न तो लेबर-इंसपेक्टर आता है और न ही कभी कोई श्रम-अधिकारी आता है। हम मज़दूर जब कभी अपने हक़ के लिए आवाज़ उठाते हैं तुरन्त पुलिस को बुला लिया जाता है और किसी भी मामले को दस-पन्द्रह मिनट से ज़्यादा नहीं चलने दिया जाता है। इधर जब से मैने 'मज़दूर बिगुल' अख़बार पढ़ना शुरू किया है, मेरी चेतना काफी बढ़ गई है। मौजूदा समाज में पूँजीपतियों से लेकर नेताओं तक ने जो जाल हम मज़दूरों का खून निचोड़चने के लिए बनाया हुआ है। उस जाल को तोड़ने का तरीका मज़दूर बिगुल अखबार से सीखने को मिलता है। इन मालिकों से अपने हक़ के लिए लड़ने का तरीका भी इस अखबार से सीखने को मिला। बिगुल अखबार को पढ़कर मैने बहुत कुछ सीखा है; जैसे अगर हम सब मज़दूर एक हो जाये तो पूरी सत्ता को पलट सकते हैं। जैसे हमें यहाँ मार्किट में एक होने की जरूरत है-चाहे सेल्स-मैन हो या चौकीदार, रिक्शा वाला, पल्लेदार, ठेला वाला हो या हिन्दू हो, मुस्लिम हो या सिख, ईसाई मजदूर हो हमें मज़दूर भाईचारे के साथ अपनी एकता को बनाना होगा। हमें एक ऐसी ताकत बनानी होगी कि लूटेरे हमें जात-धर्म के नाम पर बाँट ही पाये। इसी तरह जब पल्लेदार के साथ कोई समस्या हो तो सेल्स मैन उनके साथ आये। जब भी किसी मज़दूर के साथ कोई भी परेशानी हो तो हम सबकी नींद हराम हो जाये। हमें जागना ही होगा-अपने हक़ के लिए, अपने अधिकार के लिए। हमारा धर्म है कि हम मेहनतकशों की जारी लूट के खिलाफ़ एकजूट हो लड़े। दोस्तों, मेहनतकश साथियों हमारे लिए कोई लड़ने नहीं आने वाला चाहे वो 'आम आदमी पार्टी हो अन्ना हजारे या नरेन्द्र मोदी। दोस्तो हम मज़दूरों को ही अब अपने कदम बढ़ाने होंगे।

**– खालिद, खजूरी, दिल्ली**

## जितना मिले उसमें ही खुश रहो

### कम्पनी न्यूनतम मज़दूरी नहीं देगी, मगर कम खर्च में बजट बनाकर जीने की "ट्रेनिंग" ज़रूर दिलवा देगी

'जितना मिले उसमें ही खुश रहो' जी हाँ यह राय है, 'मैट्रिक्स क्लोथिंग प्रा.लि.' कम्पनी की जो खाण्डसा रोड़ मोहम्मदपुर गाँव, गुड़गांव में स्थित है। इस कम्पनी के मालिक का नाम 'गौतम नायर' है। एक दिन शाम 3 बजे से कम्पनी के पर्सनल विभाग की तरफ से एक अभियान लिया गया। कि कम्पनी के सभी मज़दूरों को यह बताना है कि बचत कैसे होती है। इस अभियान मे पर्सनल विभाग के 5 लोगों का पूरा एक दस्ता चल रहा था। यह दस्ता चार मंजिला कम्पनी के चारो डिपार्ट मे (एक डिपार्ट मे सिलाई की कम से कम 8 लाइन और हर लाइन मे कम से कम 25 मज़दूर) बाकायदा 10 मिनट के लिए एक लाइन को बन्द कराया जाता जिसमे एक लाइन के सभी मज़दूरों एक जगह इकट्ठा कर भाषण मे यह बताया जाता है। कि आपकी तनख्वा पी.एफ, ई.एस.आई काटकर लगभग 4700 रु है और इतनी महँगाई मे 4700 रु मे खर्च चलाना मुश्किल पड़ता है। मगर आप लोग अगर अपना बजट बनाकर खर्च करें तो आप इस तनख्वा मे भी बचत कर सकते है। और उस बचत से आप एक दिन गाड़ी, प्लाट, घर खरीद सकते हैं।

अब दस्ता यह बताता है कि बजट क्या है? बजट वह होता है जैसे कि आप जो कमाते है, और आप जो खर्च करते हैं। आपने जो कमाया और आपने जो खर्च किया उसके सारांश को बजट कहते हैं। अब हम आपको यह बताते हैं कि इसी बजट मे वचत कैसै होती है। आप सभी लोग एक-एक 5 रु की डायरी खरीद लीजिये, आप सभी लोग जो फुटकर सामान खरीदते हैं वो ना खरीदें, और महीने मे जब तनख्वा मिले तो एक साथ सामान खरीदें। जैसै-5 कि. तेल, 50 कि. आटा, 50 कि. चावल, आदि-आदि। और इस तरह आपके बजट मे भारी बचत होगी।

फिर दस्ते ने बताया कि पिछली बार एक हफ्ते की ट्रेनिंग हुई थी और इस बार 8 महीने की ट्रेनिंग होगी। सभी लोग अपने-अपने नाम व कार्ड न. लिखवा दो, सभी ने नाम व नम्बर दिये और दस्ता आगे बढ़ गया।

निष्कर्ष- कम्पनी इस बात की पूरी ट्रेनिंग देती रहती है कि जो मिल रहा है उसी मे खुश रहो हम अपनी तरफ से खुद ही साल छः महीने मे 100-200 रु बढ़ाते रहते हैं। इससे ज्यादा तनख्वा चाहिए तो जितना मन हो उतना ओवरटाइम लगाओ। मगर तनख्वा बढ़ाने की बात मत करो यूनियन बनाने की बात मत करो!

**– अन्तन, गुड़गाँव**

## मज़दूर बिगुल यहाँ से प्राप्त करें :

दिल्ली : मज़दूर पाठशाला, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर (योगेश) 09289498250; वज़ीरपुर (सनी) 09873358124; पीरागढ़ी (नवीन) 08750045975; शहीद भगतसिंह लाइब्रेरी, ए ब्लॉक, शाहबाद डेयरी, फ़ोन - 09971158783
गुड़गाँव : (अजय) 09540436262, (राजकुमार) 09919146445
लुधियाना : मज़दूर पुस्तकालय, राजीव गाँधी कालोनी, फ़ोकल प्वाइण्ट थाने के पास, फ़ोन - 09646150249 ● चण्डीगढ़ : (मानव) 09888808188
लखनऊ : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, फ़ोन - 0522-2786782, (सत्यम) 08853093555
गोरखपुर : जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, फ़ोन - 09455920657
इलाहाबाद : (प्रसेन) 08115491369 ● पटना : (विशाल) 09576203525
सिरसा : डॉ. सुखदेव हुन्दल की क्लिनिक, सन्तनगर, फ़ोन - 09813192365
मुम्बई : नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवी मुम्बई, फ़ोन - 09619039793

*"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"*
*– लेनिन*

**'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।**
**यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।**
**बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।**
**सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।**

## मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
## www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

## मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,
बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।
मनीआर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता: (वार्षिक) 70 रुपये (डाकखर्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul


## मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल : bigul@rediffmail.com
मूल्य : एक प्रति – रु. 5/-
वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित)
आजीवन सदस्यता - 2000/-

# इलाक़ाई एकता ही आज की ज़रूरत है!

कई मज़दूरों की आपबीती घटनाओं से बयानों से और साक्षात तथ्यों से यह बात एकदम स्पष्ट हो चुकी है कि आज पूँजीपति वर्ग (मालिकों का समूह) मज़दूरों के श्रम की शक्ति (काम करने की ताकत) को लूटकर मुनाफे मे तब्दील करने के लिए एकजुट है। और इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि हम जिन मज़दूरों की हड्डियाँ तक निचोड़कर मुनाफा कमा रहे हैं कही वो एकजुट न हो जायें या यूनियन न बना लें। और जिस तरह से भी सम्भव हो सके कानूनी या गैरकानूनी तरीके से आज मज़दूरों की ताकत को बाँटने व बरगलाने मे वे कामयाब भी हो रहे हैं।

आइये कुछ तथ्यों से इस चर्चा को और भी स्पष्ट करते हैं। 1.-कुछ मज़दूर जो मिण्डा कम्पनी मे काम करते थे (मिण्डा कम्पनी आटो सेक्टर कम्पनियों के पार्ट पुर्जे बनाती है और यह कम्पनी आई.एम.टी. मानेसर मे स्थित है।) उनका यह दावा है कि कम्पनी मे मज़दूरों को सिर्फ छह महीनों के लिए ही रखा जाता है। और उसके बाद निकाल दिया जाता है और नई भर्ती ली जाती है, और यह क्रम लगातार चलता रहता है।

2. बजाज मोटर्स के मज़दूरों का भी यही दावा है (बजाज मोटर्स क. एन. एच. 8 पर नरसिम्हपुर मे गाँव के पास स्थित है।) कि कम्पनी सिर्फ छः महीनों के लिए ही भर्ती करती है। और उसके बाद निकाल देती है य कोई ज्यादा ही मालिक भक्त मज़दूर है। उसको नये सिरे से भर्ती कर लेती है।

3. हीरो मोटोकार्प मे भी काम कर चुके कुछ मज़दूरों का भी यही कहना है। यह कम्पनी एन.एच.8, खाण्डसा गाँव के पास स्थित है।

4. 'जय भारत मारुति' ग्रुप कम्पनी मे मज़दूरों की भर्ती 12 ठेकेदारों के माध्यम से होती है। और बहुत ही कम मज़दूरों को कम्पनी स्थाई (परमानेण्ट) करती है। य यू कहा जाऐ तो पूरी कम्पनी मे स्थाई मज़दूर 5-6 प्रतिशत ही हैं। पूरी कम्पनी मे लगभग 2500 सौ मज़दूर काम करते हैं और उत्पादकता मे यह कम्पनी सर्वश्रेष्ठता के कई पुरस्कार भी पा चुकी है। (यह कम्पनी भी आटो सेक्टर कम्पनियों के पार्ट पुर्जे बनाती है, यह कम्पनी खाण्डसा रोड़ सेक्टर 37 मोहम्मदपुर गाँव मे स्थित है।)

5. श्रीराम पिस्टन एंव रिंग लिमिटेड यह कम्पनी राजस्थान के भिवाड़ी 'जिला अलवर' मे स्थित है। इसकी एक शाखा गाजियाबाद मे भी स्थित है, यह कम्पनी सभी दो पहिया, चार पहिया वाहन निर्माता कम्पनियों के लिए पिस्टन एंव रिंग व वाल्व बनाती है। इस कम्पनी मे लगभग 1800 सौ मज़दूर काम करते थे। जिनमे 500 सौ के लगभग स्थाई थे बाकि सभी मज़दूरों को एफ.टी.सी (फिक्सड टर्म कॉन्ट्रेक्ट) के तहत भर्ती किया जाता था। इस कम्पनी मे सभी 1800 सौ मज़दूरों की तनख्वा 6 से 8 हजार रू के बीच मे ही मिलती थी। इस कम्पनी के मज़दूरों ने 15 अप्रैल 2014 से कम्पनी की इन लुटेरी नीतियों के खिलाफ जुझारू संघर्ष किया जो कि अभी तक लगातार जारी है।

इन तथ्यों के बाबजूद यह बात तो जगजाहिर है कि आज सभी कम्पनियों मे मज़दूरों को ठेकेदार के माध्यम से, पीसरेट, कैजुअल व दिहाणी पर काम पर रखा जाता है। मज़दूरों को टुकड़ो मे बाँटने के लिए आज पूरा मालिक वर्ग सचेतन प्रयासरत है। ऐसी विकट परिस्थितियों मे भी आज तमाम मज़दूर यूनियन के कार्यकर्ता य मज़दूर वर्ग से गद्दारी कर चुकीं ट्रेड यूनियने उसी पुरानी लकीर को पीट रहे हैं। कि मज़दूर एक फैक्ट्री मे संघर्ष के दम पर जीत जाऐगा। बल्कि आज तमाम फैक्ट्रियों मे जुझारू आन्दोलनों के बाबजूद भी मज़दूरों को जीत हासिल नही हो पायी। क्योंकि इन सभी फैक्ट्रियों मे मज़दूर सिर्फ एक फैक्ट्री की एकजुटता के दम पर संघर्ष जीतना चाहते थे। दूसरा इन तमाम गद्दार ट्रेड यूनियनों की दलाली व मज़दूरों की मालिक भक्ति भी मज़दूरों की हार का कारण है। वो तमाम फैक्ट्रियाँ जिनमे संघर्ष हारे गये - रिको, बजाज, हीरो, मारूति, वैक्टर आदि-आदि।

इन तमाम उदाहरणों, तथ्यों व चर्चा से यह बात एकदम स्पष्ट हो चुकी है कि आज एक-एक फैक्ट्री मे मज़दूर संघर्ष नही जीत सकते इसलिए आज संगठन बनाने का एक ही तरीका है, वो है इलाकाई पैमाने की एकजुटता!

**– आनन्द, गुड़गाँव**

# जय भारत मारुती कम्पनी में मज़दूरों के काम के भयंकर हालात!

नील मेंटल प्रोडक्ट लिमिटेड व जय भारत मारुती ग्रुप ये दोनो नाम एक ही मालिक की फैक्ट्री के हैं। यह कम्पनी मोहम्मदपुर गाँव खाण्डसा रोड सेक्टर 37 गुड़गाँव मे स्थित है। यह कम्पनी हीरो, होण्डा, महिन्द्रा, (सुजुकी मोटरसाइकिल) व मारुति सुजुकी आदि दो पहिया व चार पहिया वाहन निर्माता कम्पनियों की वेंडर कम्पनी है। जो कि इन तमाम कम्पनियों के पार्ट पुर्जे बनाती है। यह कम्पनी माल उत्पादकता मे सर्वश्रेष्ठता के कई पुरस्कार पा चुकी है। इसलिए इस कम्पनी को (जे.बी.एम) जय भारत मारुति ग्रुप भी कहा जाता है। यह कम्पनी माल उत्पादन व अकूत मुनाफा कमाने मे तो सर्वश्रेष्ठ है ही साथ मे मज़दूरों के श्रम की लूट व जवरदस्त शोषण करने मे भी सर्वश्रेष्ठ है।

सर्वप्रथम तो यह कम्पनी किसी भी मज़दूर को कम्पनी के तहत नही भर्ती करती है। सड़क से मज़दूरों को पकड़कर काम करवाने के लिए इस कम्पनी ने 12 ठेकेदार रख रखे हैं। जिसके माध्यम से मज़दूरों को भर्ती होना होता है। मशीनों के माध्यम से बहुत ही कठिन व उन्नत टेक्नोलोजी के काम को भी टुकड़ों मे बॉटकर एकदम इतना आसान बना दिया है कि किसी भी मशीन को 10-12 साल का बच्चा भी चला लेगा जैसे-लर्निंग मशीन, सी.एन. सी मशीन, पंचिग मशीन, ड्रिल मशीन, मिग वेल्ड़िग मशीन, पावर प्रेस मशीन आदि-आदि सभी मशीने इतनी आसान बना दी हैं। कि उन मशीनों मे पीस रखकर सिर्फ एक बटन दबाना होता है।

कम्पनी के अन्दर के नियम व कानून इतने ज्यादा सख्त हैं। कि जल्द कोई मज़दूर उस कम्पनी मे टिकता ही नहीं है। हर मशीन का एक मैक्सिमम (अधिकतम) टारगेट सेट कर रखा है। और उस टारगेट को पूरा करवाने के लिए कम्पनी की तरफ से स्थाई (परमानेण्ट) सुपरवाइजर हर लाइन मे रख रखा है। जो सारी मशीनों की जानकारी रखता है कम्पनी के सुपरवाइजर के नीचे ठेकेदार का सुपरवाइजर है। जिसकी तनख्वा भी काफी ऊँची है। मुख्य उत्पदन का दारोमदार इनके कन्धों पर होता है। और यह खुद मेहनत नही करते बल्कि मज़दूरों से करवाते हैं। और अनुशासन बनाऐ रखने का पूरा काम करते हैं। ठेकेदार का काम है सड़क से पकड़कर मज़दूरों को कार्यस्थल पर पहुचाना और इसके अलावा ठेकेदार का और कोई काम नहीं, काम कैसे लेना है कितने समय तक रुकना है यह अन्दर सुपरवाइजर तय करेगा। इसके अलावा कम्पनी का नियम यह है, कि अगर 5 मिनट देर से आऐ तो एक घण्टा काट लिया जाएगा, य छुट्टी के समय 2 मिनट पहले कार्ड पंच कर दिया तो आधा घण्टा काट लिया जाऐगा। सण्डे को आना अनिवार्य है अगर सण्डे को नही आये तो 100 रू काट लिऐ जाऐंगे। ड्यूटी टाइम 12 घण्टे तो रुकना ही है इसके अलावा 4 घण्टे और रुकना पड़ेगा। मतलब 16 घण्टे का कार्यदिवस अगर बहुत जरूरी है तो हफ्ते मे एक-दो बार 12 घण्टे के बाद छुट्टी ले सकते हो अगर हफ्ते मे 2-3 बार 12 घण्टे मे छुट्टी कर ली तो गेट के बाहर। कहने के लिए तो ठेकेदार 8 घण्टे के 7500 सौ रु कहकर भर्ती लेता है मगर ज्यादा से ज्यादा 6500 रु से आगे किसी को भी नहीं देता और और उसी मे 14 पर्सेण्ट ई.एस.आई व पी.एफ, खाना व अन्य तमाम खर्चे काटे जाते हैं। (अगर कोई महीने भर काम करके छोंड़ दे तो उसको हरियाणा रेट 5547 रु का हिसाब मिलेगा और ऊपर से 200-300 रु ठेकेदार गुण्ड़ागर्दी के नाम पर जवरदस्ती काट लेता है।)

3-4 दिन अगर काम करके छोड़ दिया तो रु नही मिल सकते भगवान भी नहीं दिला सकता क्योंकि कम्पनी मालिक व ठेकेदारों से भगवान भी डरता है। और मज़दूरों की कोई एकता है नही जो संघर्ष के दम पर अपना हक हासिल कर सकें और अकसर 25-30 पर्सेण्ट लड़के 3-4 दिन के बाद नही टिक पाते और इन सभी मज़दूरों का जायज हक ठेकेदारों की जेब मे चला जाता है। इन तमाम परिस्थतियों के बावजूद जो मज़दूर काम पर लगे भी रहते हैं उनको एडवॉस व वेतन के लिए ठेकेदारों के पीछे-पीछे कुत्तों की तरह दुम हिलाकर घूमना पड़ता है। जैसे ठेकेदार ने काम पर क्या रख लिया हमको पालतू कुत्ता बना लिया हो।

लम्बे समय से इस कम्पनी मे कभी भी कोई यूनियन नही बन पायी और न ही बन सकती है क्योंकि कम्पनी के अन्दर मज़दूरों को इतने टुकड़ों मे बॉट रखा है। और अतिउत्पादन की वजह से हर मज़दूर 12 घण्टे मे ही थककर इतना चूर हो जाता है कि वो वापस शाम को काम पर आऐगा इसके अलावा और कुछ सोच ही नही सकता ।

और यह दमघोंटू हालात सिर्फ जे. बी.एम कम्पनी मे ही नहीं हैं, मैने कई कम्पनियों मे काम किया है। व कई मज़दूरों ने जैसा बताया उस हिसाब से लगभग यही परिस्थतियॉ आज गुड़गाँव की अधिकतर कम्पनियों मे है। और ज्यादातर कम्पनियों मे मज़दूरों के संगठन न बन पाने का कारण भी आज कम्पनी मालिकों की यही नीतियॉ हैं। ऐसे समय मे आज हम मज़दूरों को एक नये सिरे से सोचना होगा ओर इलाकाई आधार पर वर्ग एकजुटता बनानी होगी। क्योंकि इलाकाई आधार का संगठन ही आज हम मज़दूरों की मॉगों को पूरा करने का एक जरिया है।

**– आनन्द, गुड़गाँव**

## 15 अगस्त के अवसर पर

## हमें सच्ची आजादी चाहिए!

आजादी आयी भी तो क्या, कायम हैं गुलामी की रस्में
जनता का जीवन आज भी है सरमायेदारी के बस में।
जो गरीब थे और गरीब हुए,
जो अमीर थे और अमीर बने
काला धन बंद तिजोरी में
फिर देश की क्या तकदीर बने?

शाहों की नहीं, नेता की नहीं,
दौलत की हुकूमत आज भी है
इंसानों को जीने के लिए पैसे की जरूरत आज भी है।
वे लोग जो कपड़ा बुनते हैं, वही लोग अधानंगे हैं
यह कैसी सोने की चिड़िया
जहाँ पग-पग पर भिखमंगे हैं!

यह कृषि प्रधान है देश मगर,
आता है अनाज विदेशों से
हर गाँव शहर में आ पहुँचा बेकारी के आदेशों से।
गोदाम में क़ैद किये बैठा कोई खेतों की जवानी को
जहाँ दूध की नदियाँ बहती थीं वहाँ लोग तरसते पानी को।

अपना त्योहार बढ़ाने को मन्दिर-मस्जिद को लड़ाते हैं
इंसान नहीं शैतान हैं वो, जो जनता को बहकाते हैं।
गंदे मंसूबे लेकरके लड़ते हैं लड़ाई सूबों की
तलवार बनाकर भाषा को, भारत को काटा करते हैं।

दौलत की हुकूमत जायेगी, मेहनत की हुकूमत आयेगी
भारत की निर्धन जनता भी एक नयी जिन्दगी पायेगी।
जो ऊँच-नीच की खाई है, वह खाई पाट दी जायेगी
हम लड़कर वह दिन लायेंगे,
वह सुबह जल्द ही आयेगी।

**- कुसुम साहनी**
**जे.जे. कैम्प, बादली औद्योगिक क्षेत्र, दिल्ली**

# बावल औद्योगिक क्षेत्र श्रमिक संयुक्त कमेटी ने बुलाया पहला श्रमिक सम्मेलन

## बावल क्षेत्र में पिछले 2 माह से अलग-अलग फैक्टरियों के मज़दूर यूनियन बनाने की मांग को लेकर संघर्षरत

**बावल** (रेवाड़ी) औद्योगिक क्षेत्र में पिछले लम्बे समय से पास्को और मिंडा फुरुकावा कम्पनी के मजदूर अपनी जायज मांगों को लेकर संघर्षरत हैं। पहली अगस्त को बावल औद्योगिक क्षेत्र श्रमिक संयुक्त कमेटी ने बावल के मजदूरों के साथ हो रहे शोषण-दमन के खिलाफ गुड़गांव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल के मजदूरों का सम्मेलन करके ये तय कर दिया है कि बावल के मजदूर चुपचाप मालिकों-प्रशासन-श्रमविभाग की तानाशाही नहीं बर्दाश्त करेगें। बावल में हुए सम्मेलन में तमाम ट्रेड यूनियनों, मजदूर संगठनों ने हिस्सा लिया। सम्मेलन की अध्यक्षता एआईएस के महेन्द्र सिंह ने की। मजदूर सम्मेलन में निम्न प्रस्तावों को पारित किया गया।

1. पास्को आई.डी.पी.सी. में चल रहे विवाद का जल्द से जल्द निपटारा किया जाये व निकाले गए श्रमिकों को कार्य कर तुरन्त प्रभाव से बहाल किया जाए। 2. मिण्डा फुरुकावा से निकाले गए 145 मजदूरों को तुरन्त वापस लिया जाए। 3. वाई.के.के. यूनियन प्रधन मनोज कुमार को कार्य पर तुरन्त प्रभाव से बहाल किया जाए। 4. बावल क्षेत्र की सभी कम्पनियों में किसी भी श्रमिक को बिना कारण के नौकरी से नहीं निकाला जाये।

गुड़गांव मजदूर संघर्ष समिति बावल औद्योगिक क्षेत्र श्रमिक संयुक्त कमेटी द्वारा बुलाये मजदूर सम्मेलन की सफलता की बधाई देती है। साथ ही पूरे गुड़गांव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल में मजदूरों की जुझारू एकता के प्रयास को हमें आगे बढ़ाना होगा। हम सभी जानते है कि जब तक पूरे आटो सेक्टर के मजदूरों की सेक्टरगत यूनियन और इलाकाई एकता कायम नहीं होगी तब तक हम अपने संघर्ष को आगे नहीं बढ़ा सकते।

पिछले दिनों मारुति सुजुकी में हुए आन्दोलन का अनुभव और इस इलाके में हुए अनेक मज़दूर संघर्षो का अनुभव यही बताता है कि आज मज़दूर अलग-अलग रहकर अपने अधिकारों की हिफ़ाज़त नहीं कर सकते।

### मिंडा फुरुकावा इलेक्ट्रिक कम्पनी में एकतरफा तानाशाही के खिलाफ डटे रहे मज़दूर!

रेवाड़ी के बावल औद्योगिक क्षेत्र के सेक्टर-3 में स्थित मिंडा फुरुकावा इलेक्ट्रिक कम्पनी प्रबंधन ने 23 जून को सुबह अचानक 145 मज़दूरों को बर्खास्त कर दिया। जिसमें 14 महिला मज़दूर भी है। इसके बाद से मिंडा के मज़दूरों ने गेट पर कम्पनी का चक्का जाम करके अपने संघर्ष शुरुआत की। असल में मिंडा प्रबंधन पिछले लम्बे समय से मज़दूरों की कायम एकता को तोड़ने के लिए तीन-तिकड़म कर रहा था। मिंडा मज़दूरों ने 2013 अगस्त में प्रंबधन की तानाशाही के खिलाफ अपनी यूनियन बनाने का फैसला किया था। और उसके बाद से मज़दूरों ने तीन बार यूनियन पंजीकरण का आवदेन भी किया, लेकिन हर बार प्रंबधन ने श्रम-विभाग से मिलीभगत करके मिंडा मज़दूरों की यूनियन फाईल रद्द करा दी। फिलहाल मज़दूरों ने 22 अप्रैल को नये सिरे से स्वतंत्र यूनियन की फाईल लगाई है। जिससे प्रबंधन डरा हुआ और इस कारण वे यूनियन के नेतृत्वकारी मज़दूरों को नौकरी से बर्खास्त करके मज़दूरों की एकता तोड़ने का प्रयास कर रहा है। लेकिन इस बार प्रबंधन की एकतरफा कार्रवाई के खिलाफ सिर्फ स्थायी मज़दूर ही संघर्ष नहीं कर रहे बल्कि 400 ठेका मज़दूर और 200 एफटीसी मज़दूर भी कन्धे से कन्धा मिलकर संघर्ष में साथ हैं। मिंडा प्रबंधन ने मज़दूरों को डराने के लिए खुलेआम बांउसर गेट पर बैठा रखे हैं।

पूरे बावल क्षेत्र में पिछले 2 माह से अलग-अलग फैक्टरियों के मज़दूर यूनियन बनाने की मांग को लेकर संघर्ष कर रहे है चाहे वे एहरेस्टी के मज़दूरों हो या पास्को के। इसलिए ये बात साफ है कि आज पूरे गुड़गांव-मानेसर-धारुहेड़ा-बावल में

मज़दूरों की कुछ साझा मांग बनाती है जैसे यूनियन बनाने की मांग, ठेका प्रथा खत्म करने की मांग या जबरन ओवरटाईम खत्म करने की मांग। ये सभी हमारी साझा मांगें है इसलिए इनके खिलाफ भी हमें साझा संघर्ष करना होगा क्योंकि हम सभी मज़दूर जानते है मालिकों-सरकार-पुलिस-प्रशासन गठजोड़ एकजुट होकर मज़दूरों के खिलाफ है और इनके खिलाफ सिर्फ एक फैक्टरी के आधार पर नहीं जीता जा सकता है बल्कि पूरे आटो सेक्टर या पूरे इलाके के मज़दूर की फौलादी एकता कायम करेगें ही मज़दूर विरोधी ताकतों को मुंहतोड़ जवाब दिया जा सकता है। इसलिए हमें अपने फैक्टरी संघर्ष के साथ ही पूरे आटो सेक्टर के मज़दूरों की एकता कायम करने की लम्बी लड़ाई में जुटाना होगा।

### मिंडा फुरुकावा का इतिहास और मज़दूरों के हालात!

मिंडा फुरुकावा इलेकिट्रक प्रा. लि. उत्पादन 2008 से हो रहा है ये मिंडा फुरुकावा आटो कम्पनियों के लिए वायरिंग बनाने का काम करती है इसकी मुख्या सप्लाई कम्पनी मारुति सुजुकी, निशान, होण्डा है। मौजूद समय कम्पनी में लगभग 1000 मज़दूर काम रहे है जिसमें 300 स्थायी मज़दूर हैं 400 ठेका मज़दूर तथा अभी दो माह से 200 मज़दूरों को एफटीसी (फिक्स टर्म कॉण्ट्रैक्ट) के तौर पर भर्ती किया गया है। इन मज़दूरों में 100 से ज्यादा महिला मज़दूर भी हैं। लगभग पांच सालों से काम कर रहे स्थायी मज़दूरों को वेतन के नाम पर 6200 रुपये मिलते है जबकि ठेका मज़दूरों को मात्र 5300 रुपये मिलते हैं। मिंडा प्रबंधन पिछले एक साल से जबरन ओवरटाईम करा रहा है जिसमें मज़दूरों से 10-12 घण्टे काम कराना आम बात है।

**– बिगुल संवाददाता**

# निर्माण मज़दूर यूनियन, नरवाना ने सम्पन्न की दूसरी आम सभा

पिछली 3 अगस्त को निर्माण मज़दूर यूनियन, नरवाना (हरियाणा) ने अपनी दूसरी आम सभा सम्पन्न की। सभा की अध्यक्षता मज़दूर साथी इन्दर ने की जो यूनियन के अध्यक्ष भी हैं। सभा के दौरान मुख्य रूप से तीन एजेंडों पर बात की गयी। पहली चर्चा यूनियन की ज़रूरत और मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक लक्ष्य पर की गयी। चर्चा के दौरान यह बात तफ़सील से रखी गयी कि यूनियन के तहत हमारा रोज़मर्रा का संघर्ष हमारी ज़िन्दगी के लिए उतना ही ज़रूरी है जितना कि साँस लेना। किन्तु हमें अपने दूरगामी लक्ष्य से अपनी नज़र एक पल के लिए भी नहीं हटानी होगी। यह लक्ष्य है ऐसा समाज बनाना जिसमें उत्पादन पर उत्पादक वर्गों का कब्जा हो और वितरण का अधिकार भी उन्हीं के हाथों में हो।

दूसरी बात निर्माण क्षेत्र से जुड़े लदान-उतरान के मज़दूरों की तमाम दिक्कतों के सम्बन्ध में की गयी, साथ ही ली गयी नयी योजनाओं को भी साझा किया गया। इसके बाद लेबर चौक पर खड़े होने वाले निर्माण मज़दूरों की दिक्कतों और इनके लिए ली जाने वाले योजनाओं के सम्बन्ध में बात रखी गयी।

16 अप्रैल, 2014 यानी जब से यूनियन का गठन हुआ है तब से अब तक का आय-व्यय का ब्यौरा भी सार्वजनिक किया गया। आपसी एकता को कैसे मज़बूत किया जाये, इस विषय पर तथा यूनियन द्वारा की गयी विभिन्न गतिविधियों पर भी चर्चा हुई। निर्माण मज़दूरों के लिए कई सरकारी योजनाओं फ़िलहाल सिर्फ़ कागजों में ही दर्ज हैं और मज़दूरों को उनका कोई लाभ नहीं मिलता। यह कोई ख़ैरात नहीं बल्कि मज़दूरों का हक़ है और इन्हें पाने के लिए एकजुट प्रयास करना होगा, इस पर बात की गयी। जल्द से जल्द यूनियन का रजिस्ट्रेशन कराने के सम्बन्ध में भी बात की गयी। सभा को यूनियन के सचिव रमेश खटकड़, साथी इन्दर, साथी नसीब, साथी अन्ताराम व साथी अरविन्द ने सम्बोधित किया तथा विभिन्न मज़दूर साथियों ने बातचीत में हस्तक्षेप किया। बड़ी संख्या में निर्माण मज़दूरों ने यूनियन द्वारा बुलाई गयी इस सभा में भागीदारी की।

**– बिगुल संवाददाता**

# स्वतंत्रता दिवस – क्यों जश्न मनाये मेहनतकश आबादी!

**67 साल पहले** 15 अगस्त 1947 को गोरी चमड़ी के अंग्रेजों की जगह दिल्ली की गद्दी पर भूरी चमड़ी वाले देसी साहबों ने अपना आसन जमाया। तबसे आजतक इसे स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाये जाने की परंपरा रही है। इसे आज़ादी के त्योहार के तौर पर प्रचारित किया गया। सरकारों और शासक वर्ग के पिट्ठुओं ने यह कभी नहीं बताया कि वास्तव में यह भारत के पूँजीपति वर्ग की आज़ादी और आम लोगों के लिए उज़रती गुलामी वाली व्यवस्था का प्रतीक है। आज़ादी तो आई लेकिन वह केवल धनवानों के घरों में ही कैद होकर रह गयी।

आज़ादी के 67 सालों के बाद हम कहाँ पहुँचे हैं, इस पर एक नज़र डालना दिलचस्प होगा। आज़ादी के बाद से आज तक भारतीय समाज अधिकाधिक दो खेमों में बँटता चला गया है। 1990 के बाद यह खाई और भी तेज़ी से बढ़ने लगी है। एक ओर मुट्ठी भर लोग हैं जिन्होंने पूँजी, ज़मीनों, मशीनों, खदानों आदि पर अपना मालिकाना कायम कर लिया है तो दूसरी ओर बहुसंख्य मज़दूर, ग़रीब-मध्यम किसान और निम्न-मध्य वर्ग के लोग हैं जिनका वर्तमान और भविष्य इन मुट्ठी भर पूँजीपतियों के रहमोकरम पर आश्रित हो गया है। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत दुनिया का 10वाँ सबसे धनी देश है, लेकिन प्रति-व्यक्ति आय के हिसाब से देखें तो दुनिया में भारत का स्थान 149 वाँ बैठता है। 2013 में देश में 55 अरबपति थे जिनकी दौलत दिन-दूनी रात चौगुनी रफ़्तार से बढ़ती जा रही है। वहीं दूसरी ओर दुनिया का हर तीसरा ग़रीब भारतीय है और देश के सबसे धनी राज्य गुजरात में सबसे अधिक कुपोषित बच्चे हैं। आज हमारे देश में 20 करोड़ लोग ऐसे हैं जिन्हें अगर अच्छी मज़दूरियों पर कारखानों में काम मिले तो वे अपना वर्तमान पेशा छोड़ने के लिए तैयार हैं। इनमें ज़्यादातर लोग फेरी लगाने, फूल बेचने, खोमचा लगाने, जूतों-कपड़ों की मरम्मत करने आदि जैसे कामों में लगे हुए हैं। नये कारखाने लगने और उत्पादन में बढ़ोत्तरी के बावजूद नये रोज़गार लगभग नहीं के बराबर पैदा हो रहे हैं। कारखानों में काम करने वाले मज़दूरों की वास्तविक मज़दूरियाँ लगातार घट रही हैं। 1984 में जहाँ कुल उत्पादन लागत का 45 प्रतिशत हिस्सा मज़दूरी के रूप में मज़दूरों को दिया जाता था, वह 2010 तक आते-आते केवल 25 प्रतिशत रह गया। इसका सीधा मतलब है: ज़्यादा मेहनत और अधिक उत्पादन करने के बावजूद मज़दूरियाँ लगातार घटी हैं जबकि मालिकों का मुनाफ़ा लगातार बढ़ता गया है।

सन 2014 की संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार मानव विकास सूचकांक के आधार पर दुनिया के 187 देशों में भारत का स्थान 135 वाँ है। जबकि हमारे यहाँ जीडीपी लगातार बढ़ रहा है और दावा किया जा रहा है कि हम दुनिया की महाशक्ति बनने वाले हैं। असल में भारत एक ही साथ दुनिया का ताकतवर मुल्क भी है और एक पिछड़ा हुआ देश भी है। अगर हम पूँजीपति वर्ग के विकास को ध्यान में रखकर देखें तो भारत सचमुच एक बड़ा और ताकतवर देश बन चुका है लेकिन अगर हम आम जन ख़ासकर मज़दूर और ग़रीब तबकों के नज़रिये से देखें तो भारत एक पिछड़ा देश ही कहलायेगा। इस तरह भारत में दो देश आकार ग्रहण कर चुके हैं। इन्हें हम क्रमशः पूँजीपतियों का भारत और मज़दूरों को भारत कह सकते हैं। हमारे देश में 40 करोड़ लोग ऐसे हैं जिनके घर बिजली नहीं पहुँची है और 18 करोड़ लोगों के पास घर है ही नहीं। आजकल भी 31 प्रतिशत आबादी खुले में शौच करती है। जहाँ तक दवा-इलाज की सुविधाओं की बात है तो यहाँ भी स्थिति बेहद ख़राब है। दवायें 50 प्रतिशत भारतीयों की पहुँच से बाहर हैं। शहरों में 1 लाख लोगों के पीछे 4.48 अस्पताल और 308 बिस्तर हैं, जबकि गाँवों में प्रति 1 लाख लोगों के पीछे 0.77 अस्पताल और 44 बिस्तर हैं। यही हाल शिक्षा का भी है। पुलिस, फौज और नेताओं की ऐयाशी के ख़र्चे जहाँ लगातार बढ़ते जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था को क़रीब-क़रीब ख़त्म कर दिया गया है। अगर 2003 के आँकड़ों को देखा जाये तो भारत की सरकार ने शिक्षा पर प्रति-व्यक्ति ख़र्च को घटाते-घटाते 18 पैसे के स्तर पर ला दिया है।

जनता के ऊपर शासन करने के नाम पर केन्द्र और राज्य स्तर पर भारी-भरकम अफ़सरशाही है। केवल केन्द्र सरकार की बात करें तो इसके पास कुल 31 लाख कर्मचारी हैं जिनको साल भर में 4 लाख 20 हज़ार करोड़ रूपये से अधिक तनख़्वाहों के रूप में बाँट दिया जाता है। संसद नाम की बहसबाजी का अड्डा भी जनता के ऊपर बोझ साबित हो रहा है। इसकी एक घंटे की कार्यवाई में डेढ़ करोड़ रुपया स्वाहा हो जाता है। यही हाल पुलिस और फौज का है। पुलिस के ज़्यादातर जवान तो नेताओं, नौकरशाहों की रक्षा में लगे रहते हैं या फिर उनके घरों में अर्दलियों को काम कर रहे हैं। कहने के लिए सेना देश के दुश्मनों से रक्षा के लिए होती है, लेकिन हमारे देश की सेना तो देश के भीतर ही अलग-अलग राज्यों में तैनात है। कश्मीर से लेकर असम, अरुणांचल, नागालैंड जैसे बहुत से राज्य हैं जहाँ भारतीय सेना को आम जनता के ख़िलाफ़ तैनात किया गया है।

इन थोड़े से तथ्यों की रोशनी में हम साफ़-साफ़ देख सकते हैं कि 20-22 करोड़ की आबादी वाला पूँजीपतियों का भारत अपने नेताओं, संसद और नेताशाही के दम पर तथा पुलिस और सेना के ज़ोर से किस तरह 100 करोड़ से ज़्यादा जनसंख्या वाले मज़दूरों और ग़रीबों के भारत का शोषण कर रहा है। एक बात तय है कि ग़रीबों, मेहनतकशों की आबादी को हमेशा-हमेशा के लिए दबाया नहीं जा सकता। निश्चित ही एक दिन आयेगा जब ये सोये हुए लोग जागेंगे और अपने वर्ग-हितों को पहचान कर अपनी सामूहिक-संगठित शक्ति से पूँजी की गुलामी से न सिर्फ़ स्वयं मुक्त होंगे बल्कि पूरी मानवता को मुक्त करेंगे।

**– तपीश मैन्दोला**

# बोलते आँकड़े चीख़ती सच्चाइयाँ

एक रिपोर्ट के अनुसार अरबपतियों की संख्या के मामले में भारत दुनिया में आठवें नंबर पर पहुंच गया है और इस समय भारत में 14,800 अरबपति हैं। पूँजीपतियों की बाँछें खिली हुई हैं, मध्यवर्ग भारत की इस "तरक्की" पर लहालोट हुआ जा रहा है। पूँजीवादी मीडिया इस विकास का जोर-शोर से गुणगान कर रहा है। दूसरी ओर देश की 77 फीसदी आबादी रोजाना महज बीस रुपये पर गुजारा कर रही है। देश की 80 फीसदी जनता को शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और पानी जैसी बुनियादी सुविधाएं भी मयस्सर नहीं हैं। आजादी मिलने के 67 साल बाद की स्थिति यह है कि देश की ऊपर की दस फीसदी आबादी के पास कुल परिसम्पत्ति का 85 प्रतिशत इकट्ठा हो गया है जबकि नीचे की 60 प्रतिशत आबादी के पास महज दो प्रतिशत है। भारत में 0.01 फीसदी लोग ऐसे हैं जिनकी आय देश की औसत आय से दो सौ गुना अधिक है। देश की ऊपर की तीन फीसदी और नीचे की चालीस फीसदी आबादी की आमदनी के बीच का फासला साठ गुना हो चुका है।

देश की लगभग सवा सौ करोड़ की आबादी में शासक वर्ग उससे जुड़े उच्च मधय वर्ग से लेकर खुशहाल, मधयम मधय वर्ग तक की कुल आबादी पंद्रह से बीस करोड़ के बीच है। इनमें पूँजीपति, व्यापारी, ठेकेदार, शेयर दलाल, कमीशन एजेंट, कारपोरेट प्रबंधक, नेता, सरकारी नौकरशाह, डॉक्टर, इंजीनियर, उच्च वेतनभोगी प्रोफेसर, मीडियाकर्मी और अच्छी कमाई वाले वकील आदि शामिल हो सकते हैं। यही वह छोटी सी आबादी है जिसको पूँजीवाद ने समृद्धि के शिखर पर पहुँचा दिया है। इन्हें के लिए तमाम शॉपिंग माल्स, मल्टीप्लेक्स, होटल, रिसोर्ट हैं, महंगे कार और दुपहिया वाहन हैं। इसी के बूते शेयर बाजार और मनोरंजन उद्योग चलता है। बाकी करीब 85 फीसदी आबादी इनकी जरूरतें पूरी करने के लिए जिन्दा रहने की बेहद न्यूनतम शर्तो पर गुजर बसर करती है।

भारत समेत दुनिया भर में ऊपर के संस्तरों में आयी समृद्धि और इसके बरक्स नीचे की आम मेहनतकश आबादी की दयनीय हालत का जायजा लेते हैं –

- भारत में रूस, आस्ट्रेलिया और फ्रांस से ज्यादा अरबपति हैं। अरबपतियों के मामले में भारत दुनिया में आठवें नंबर पर है। न्यू वर्ल्ड वेल्थ की संपत्ति संबंधी ताजा सूची के अनुसार कम से कम एक अरब (सौ करोड़) डॉलर की संपत्ति रखने वाले व्यक्तियों की संख्या के मामले में भारत दुनिया में आठवें नंबर पर है। भारत धानी लोगों की इस सूची में अमेरिका, चीन, जर्मनी और ब्रिटेन से नीचे है लेकिन सिंगापुर और कनाडा से ऊपर है।
- भारत में 14,800 अरबपति हैं। इसमें मुंबई में सबसे ज्यादा 2700 अरबपति हैं।
- पिछले दस वर्षो के दौरान विश्व के पैमाने पर करोड़पतियों और अरबपतियों की संख्या में अत्यधिक भिन्न दरों पर इज़ाफ़ा हुआ है। इस दौरान करोड़पतियों की संख्या 58 प्रतिशत और अरबपतियों की संख्या 71 प्रतिशत बढ़ी है।
- दूसरी ओर हाल ही जारी हुई संयुक्त राष्ट्र की विकास संबंधी रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में 2.2 अरब से ज्यादा लोग गरीबी के निकट हैं अथवा गरीबी में जीवन बिता रहे हैं। इस अध्ययन में यह भी पाया गया है कि लगभग 1.2 अरब लोग रोजाना 1.25 डॉलर (75 रुपये) अथवा उससे कम पर जीवन व्यतीत करते हैं और दुनिया की बारह फीसदी आबादी भयंकर भुखमरी की शिकार है।
- तकरीबन डेढ़ अरब लोग चौतरु गरीबी के शिकार हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवनस्तर के मामले में इनकी स्थिति बेहद दयनीय है। इसके अलावा 80 करोड़ लोग गरीबी के मुहाने पर हैं और कोई भी झटका उन्हें गरीबी के दलदल में धाकेल देगा।
- सबसे ज्यादा निपट गरीबी दक्षिण एशियाई देशों में है जहां 80 करोड़ से ज्याद लोग गरीब हैं और 27 करोड़ लोग गरीबी के निकट पहुंच चुके हैं जो कि यहां की कुल आबादी का 71 फीसदी से ज्यादा है।
- 1990 से 2010 के बीच विकासशील देशों में आय असमानता 11 फीसदी तक बढ़ चुकी थी।
- दुनिया की कुल आबादी में ग्रामीण आबादी का हिस्सा लगभग पांच फीसदी है लेकिन गरीबी के मामले में ग्रामीण आबादी पंद्रह फीसदी है।
- लगभग पचास फीसदी बुजुर्ग लोग – 46 प्रतिशत ऐसे लोग जिनकी उम्र साठ साल या ज्यादा है – एक या एक से अधिक शारीरिक अथवा मानसिक व्याधियों से ग्रस्त हैं।
- तीसरी दुनिया के देशों में बच्चों की स्थिति बेहद नाजुक है। सौ में सात बच्चे पांच साल की उम्र पार नहीं कर पाते, पचास बच्चे अपना जन्म पंजीकरण कराने से पहले ही मौत के मुँह में समा जाते हैं, 68 बच्चे आरंभिक शिक्षा तक नहीं पहुंच पाते, 17 बच्चे प्राथमिक स्कूल में जाने से पहले ही जान गवां बैठते हैं, 30 विकसित नहीं हो पाते और 25 गरीबी में पहुंच जाते हैं।

दरअसल, पूँजीवाद का बुनियादी तर्क ही ऐसा है कि वह धनी-गरीब के बीच अन्तर को बढ़ाता है, क्षेत्रेय असमानता को बढ़ाता है, कृषि और उद्योग की बीच अन्तर बढ़ाता है और गांव व शहर के बीच अन्तर को बढ़ाता है। पूँजीवाद के अन्तर्गत शिखरों पर जो समृद्धि आती है और जो पूँजी का अंबार इकट्ठा होता है वह नीचे के मेहनतकशों के अतिरिक्त श्रम को निचोड़कर ही होता है। इस लिए जबतक पूँजीवाद रहेगा अमीरी और गरीबी के बीच खाई बढ़ती ही जाएगी। पूँजीवाद का नाश किए बिना इस खाई को पाटा नहीं जा सकता।

**– संजय**

# बंगलादेश के गारमेण्ट मजदूरों का जुझारू संघर्ष

## तीन महीने से वेतन नहीं मिला, मजदूर हड़ताल पर

## मालिकों और पुलिस का उत्पीड़न तोड़ नहीं पाया उनके हौसले को

### भूखे पेट रहकर भी शानदार तरीके से लड़ रहे हैं मजदूर

**मंदी का दुष्चक्र** पूँजीवादी व्यवस्था के लिए असमाधेय संकट बन चुका है। मुनाफे की घटती दर से पूँजीपतियों की सांसें अटकी हुई हैं। अपना मुनाफा बनाये रखने के लिए पूँजीपति मजदूरों की हड्डियाँ तक निचोड़ डाल रहे हैं। लेकिन मजदूर भी अब चुपचाप बर्दाश्त नहीं कर रहे। दुनिया भर में मजदूर पूँजीपतियों की बर्बर लूट का जमकर प्रतिरोध कर रहे हैं और अपने अधिकारों के लिए सड़कों पर उतर रहे हैं। बंगलादेश में पिछले साल राना प्लाजा फैक्टरी गिरने से बारह सौ से अधिक मजदूरों और उनके बच्चों की मौत के बाद से टेक्सटाइल मजदूरों के आन्दोलनों का सिलसिला लगातार जारी है। इस समय तुबा समूह के मजदूर हड़ताल पर हैं। इस समूह के 1600 मजदूरों को पिछले तीन महीने से वेतन नहीं मिला है। मजदूरों के पास न पैसा है न ही भोजन। बावजूद इसके वे लड़ रहे हैं। ये लड़ाई उनके जीवन-मरण का प्रश्न बन चुकी है। मई से हड़ताल पर गए मजदूरों ने दो फैक्ट्रियों पर कब्जा कर लिया और पिछले दो सप्ताह से वे भूख हड़ताल पर हैं। इसमें कई मजदूर भोजन की कमी की वजह से कमजोर हो गए हैं। कई बीमार पड़ गए और तमाम अस्पताल में हैं। इन विकट परिस्थितियों में भी मजदूरों ने हिम्मत नहीं हारी है और जुझारू तरीके से संघर्ष को आगे बढ़ा रहे हैं।

बंगलादेश में करीब 40 लाख मजदूर बेहद खराब हालात में गारमेण्ट उद्योग में काम करते हैं। दो वर्ष पहले ढाका की ताजरीन गारमेण्ट फैक्ट्री में आग से 150 मजदूर मारे गये थे। बंगलादेश में इस घटना से पहले पिछले 3 वर्ष में आग लगने या इमारत गिरने से 1800 से ज्यादा गारमेण्ट मजदूरों की मौत हो चुकी थी। राना प्लाजा में इमारत गिरने से 1100 मज़दूरों की मौत के बाद सरकार और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की ओर से कुछ दिखावटी घोषणाओं के अलावा कोई ठोस कार्रवाई न होने से क्रुद्ध मजदूरों ने मई दिवस के दिन देश के कई शहरों में जुझारू विशाल प्रदर्शन किये। उसके बाद सितम्बर और नवम्बर में भी गारमेण्ट मजदूरों ने व्यापक विरोध प्रदर्शन आयोजित किये जिसके दबाव में सरकार को उनकी न्यूनतम मजदूरी में 77 प्रतिशत बढ़ोत्तरी करनी पड़ी (हालाँकि अब भी यह बेहद कम है)। इन हादसों के मद्देनजर इंडस्ट्रियल ग्लोबल यूनियन फेडरेशन और अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के नेतृत्व में कार्यकर्ताओं और यूनियनों के अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर जबर्दस्त प्रयास से आग एवं भवन सुरक्षा पर बंगलादेश समझौता हुआ था। समझौते के निरीक्षक फरवरी से फैक्ट्रियों का निरीक्षण कर रहे हैं जिसमें चौंकाने वाले तथ्य सामने आए हैं। इसमें पता चला है कि ज्यादातर गारमेण्ट फैक्ट्रियां असुरक्षित हैं, आग से निपटने में पर्याप्त रूप से तैयार नहीं हैं, भवन मजबूत नहीं हैं, ओवरलोडेड हैं और निर्माणाधीन हैं।

बंगलादेशी मजदूरों का भयंकर शोषण और उत्पीड़न जारी है। अपने वेतन के लिए तीन माह से संघर्ष कर रहे मजदूरों को न भूख की परवाह है न ही पुलिस दमन की। पर्याप्त भोजन नहीं मिलने के कारण बहुत से मजदूर कमजोर हो गए हैं, कई ने

बिस्तर पकड़ लिया है और तमाम अस्पताल में भर्ती हैं लेकिन आन्दोलन का जोश बरकरार है। पिछले दो सप्ताह के दौरान हड़ताल के समर्थन में प्रदर्शन कर रहे लोगों पर पुलिस, सरकार और मालिकों के गुण्डों ने कई बार हमले किए और कुछ ही दिन पहले कब्जा की गयी फैक्ट्रियों में जबरन घुसकर यूनियन पदाधिकारियों को बेरहमी से पिटाई के बाद उन्हें गिरफ्तार कर लिया। तुबा समूह के हड़ताली मजदूरों का भयंकर उत्पीड़न और फैक्ट्री मालिकों और सरकार की बेरुखी के कारण स्थिति भयानक होती जा रही है। मजदूर पिछले दो सप्ताह से भूख हड़ताल पर हैं। तुबा समूह का मालिक वही शख्स है जो ताजरीन फैक्ट्री का मालिक रह चुका है। ताजरीन फैक्ट्री में अग्निकांड के एक साल बाद फैक्ट्री मालिक की गिरफ्तारी हुई थी और अब उसने हड़ताल का फायदा उठाकर जमानत भी प्राप्त कर ली है।

तुबा समूह पश्चिमी देशों के बड़े कार्पोरेशन जैसेकि वालमार्ट के लिए कपड़े बनाता है और वर्ल्ड कप के दौरान इसने कई यूरोपीय कंपनियों के लिए फीफा समर्थित कपड़े बनाए। अंतर्राष्ट्रीय गारमेण्ट उद्योग, जो दुनिया के तमाम देशों के खाते पीते मध्यवर्ग को सस्ते में फैशनेबल कपड़े लगातार उपलब्ध कराता है, बंगलादेशी मजदूरों के शोषण पर टिका हुआ है। कुछ दिन पहले ही बंगलादेश के दो औद्योगिक शहरों में वेतन की मांग को लेकर प्रदर्शन कर रहे हजारों गारमेण्ट मजदूरों पर दंगा पुलिस ने आंसू गैस के गोले दागे। इस दौरान हुए पथराव में दर्जनों लोग घायल हुए। इसमें कम से कम दो सौ कारखाने बंद कर दिए गए। बंगलादेश कपड़ा निर्यात से सालाना 20 बिलियन डालर कमाता है जबकि वहां के मजदूरों को दुनिया में सबसे कम वेतन मिलता है।

बंगलादेश, भारत और पाकिस्तान में लगभग हर महीने ही कोई न कोई भयंकर हादसा होता है जिसमें भारी संख्या में मजदूर मारे जाते हैं। बंगलादेश में आग लगने से डेढ़ सौ मजदूरों को मारे जाने की घटना के बाद पाकिस्तान के दो कारखानों में आग लगी थी जिसमें तीन सौ से ज्यादा मजदूरों की जान गयी थी।

भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान और श्रीलंका से लेकर मलेशिया, इण्डोनेशिया, कोरिया, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील, मेक्सिको, चीन, क्रोशिया आदि देशों में एक के बाद उठ रहे जुझारू आन्दोलन इन देशों के उस मजदूर वर्ग की बढ़ती बेचैनी और राजनीतिक चेतना का संकेत दे रहे हैं जो हर तरह के अधिकारों से वंचित और सबसे बर्बर शोषण का शिकार है। बेहद कम मजदूरी पर और बहुत खराब व खतरनाक स्थितियों में काम करने वाली यह विशाल मजदूर आबादी तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में मजदूरों के 90 प्रतिशत से अधिक है। इनका भारी हिस्सा असंगठित है और ठेका, दिहाड़ी, कैजुअल या पीसरेट पर काम करता है। इन देशों में पूँजीवादी विकास इसी विराट मजदूर आबादी की हड्डियाँ निचोड़ कर हो रहा है। बिखराव, संगठनविहीनता और पिछड़ी चेतना का शिकार यह मजदूर वर्ग अब तक प्रायः कुछ रक्षात्मक संघर्षों या बीच-बीच में फूट पड़ने वाली उग्र झड़पों के विस्फोट तक सीमित रहा था। लेकिन दुनिया भर में जगह-जगह हो रहे आन्दोलन बताते हैं कि इसमें तेजी से अपने अधिकारों और एकजुटता की चेतना का संचार हो रहा है और यह पूँजी की ताक़तों से लोहा लेने के लिए तैयार हो रहा है।

**– संजय**

# गरीब बस्ती के लोगों का बिजली कार्यालय पर ज़ोरदार धरना-प्रदर्शन

**लुधियाना** का मज़दूर बस्ता राजाव गाँधी कालोनी के लोगों ने गुजरी 7 अगस्त को बिजली सम्बन्धी समस्याएँ हल न होने के खिलाफ बिजली विभाग के कार्यालय पर कारखाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में ज़ोरदार धरना-प्रदर्शन किया।

कालोनी में बिजली सप्लाई खराब रहने की बेहद गम्भीर समस्या बनी हुई है। ट्रांस्फार्मर का फयूज बार बार उड़ता रहा है। तारें सड़ती रहती हैं। जब बिजली खराब हो जाती है तो कई-कई दिनों तक बिजली विभाग वाले बार-बार शिकायत करने के बावजूद भी ठीक नहीं करते। इस बार भी 5 जुलाई की शाम को ट्रांस्फार्मर के पास से तार जल गई थी जो ठीक नहीं की गई। कालोनी में बिजली मीटरों के बक्से खराब हालत में हैं। इसके कारण लोगों को करण्ट लगने का खतरा बना हुआ है। 11 हज़ार वोल्ट की तारें घरों की छतों के बहुत नजदीक से गुजरती हैं। इन सभी मसलों पर कारखाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में कालोनी निवासी बिजली विभाग और डी.सी. कार्यालयों को दो वर्ष से समस्याएँ हल करने के लिए कहते आएँ हैं। लेकिन इनके कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। 50-100 लोगों के दो-तीन बार पहले भी बिजली कार्यालय पर प्रदर्शन हुए हैं। कुछ दिन तक तो बिजली अधिकारी कालोनी की समस्या को गम्भीरता से लेते हैं लेकिन समय गुजरने से बात फिर वहीं की वहीं आ जाती है। एक वर्ष पहले कालोनी निवासियों के संघर्ष के दबाव में बिजली विभाग ने सर्दियों में नया ट्रांस्फार्मर लगाने का भरोसा दिया था लेकिन कुछ नहीं किया। दो महीने पहले फिर सैकड़ों लोगों के हस्ताक्षर करवाकर एस.डी.ओ. को माँगपत्र दिया गया था। ट्रांस्फार्मर लगाने का भरोसा एक बार फिर मिला लेकिन पूरा नहीं हुआ।

तीन दिन तक बिजली न आने पर 7 जुलाई को दोपहर 12 बजे 25-30 लोग इक्कठे होकर बिजली कार्यालय गए। इसके बाद बिजली खराबी ठीक कर दी गयी लेकिन टाल दी गयी। इसके बाद उसी दिन तीन बजे कालोनी के सैकड़ों लोगों ने बिजली कार्यालय पर धरना लगा दिया। जब काफी समय गुजर जाने के बाद भी कोई अफसर बात सुनने के लिए नहीं आया तो कार्यालय के दोनों गेट जाम कर दिए गए। काफी समय तक गेट जाम रहने के बाद बिजली विभाग और पुलिस के अफसर पहुँचे। एडीशनल एस.डी.ओ. ने वादा किया कि अगले दिन से ही ट्रांसफार्मर लगाने की कार्रवाई शुरू होगी। इसके बाद ही लोगों ने धरना हटाया। अगले दिन एडीशनल एस.डी.ओ. कालोनी में आकर ट्रांसफार्मर लगाने की जगह देखने भी आया। कालोनी निवासियों ने तय किया है कि अगर बिजली विभाग उनकी समस्याओं की अनदेखी का रवैया जारी रखेगा तो और भी बड़ा प्रदर्शन किया जाएगा।

वास्तव में लुधियाना में गरीबों की सभी बस्तियों में बिजली की ऐसी ही समस्याएँ हैं। बिजली विभाग गरीबों की समस्याओं को गम्भीरता से नहीं लेता। पैसे वालों की ही सुनवाई होती है। गरीब लोगों की तभी सुनवाई होती है जब वे एकजुट होकर आवाज़ उठाते हैं। पानी, साफ-सफाई, गलियों-सड़कों, आदि सभी मामलों में गरीबों की बस्तियों के हालात बहुत खराब हैं। लुधियाना शहर की बड़ी बहुसंख्या ऐसी ही नारकीय हालतों वाले इलाकों में रहती है। रिहायशी समस्याओं पर गरीबों का एक बड़ा आन्दोलन खड़ा होना बहुत जरूर है। राजीव गाँधी कालोनी के निवासी साफ-सफाई, पानी, बिजली के मुद्दों पर संघर्ष की राह पर हैं। लोगों ने इस संघर्ष के दौरान देखा है कि जब एकजुट होकर संघर्ष करते हैं तो समस्या हल हो सकती है। इससे पहले लोग बिजली की तारें सड़ने पर आपस में पैसे इक्कठे करके तारे बदलवाते थे। लेकिन अब ऐसा नहीं होता। अब लोग इक्कठे होकर बिजली विभाग से संघर्ष करते हैं। अन्य मुद्दों पर हुए संघर्ष का भी असर हुआ है। नगर निगम द्वारा लगाई गई एक प्राइवेट कम्पनी गाड़ी द्वारा कालोनी से कूड़ा इक्कठा करने लगी है। रात को गलियों में रोशनी के लिए कुछ स्ट्रीट लाइटें भी लगी हैं।

लोग पहले चुनावी पार्टियों के साथ जुड़े किसी न किसी नेता के पीछे लगकर समस्याओं का हल ढूँढते थे। लेकिन अब लोग समझने लगें हैं कि चुनावी पार्टियों के नेताओं के पीछे लगने से कोई फायदा नहीं होता बल्कि एकजुट संघर्ष के जरिए ही हालत बदल सकती है।

**– बिगुल संवाददाता**

# इज़रायली बर्बरता की कहानी – एक डाक्टर की ज़ुबानी

## डॉ. मैड्स गिल्बर्ट – एक सच्चा डॉक्टर जिसने ज़ुल्म और अन्याय के ख़िलाफ़ संघर्ष का पक्ष चुना

**तीन दिन के युद्धविराम** के बाद शुक्रवार (8 अगस्त) को फिर से गाजा पट्टी पर इजराइल द्वारा हमले शुरू हो चुके हैं जिनका सबसे पहला निशाना छत पर खेल रहा एक 10 साल का बच्चा बना। 8 जुलाई से जारी इस बर्बर नरसंहार में अब तक इजराइल 1800 से ऊपर फलस्तीनी आम नागरिकों को कत्ल कर चुका है और 10,000 के लगभग लोग घायल हैं। मगर इजरायली जियनवादियों के अपराध यहीं तक नहीं रुक जाते, वो इस से कहीं ज़्यादा अमानवीय स्तर तक गिर चुके हैं। जियनवादी कातिल गिरोह अस्पतालों को भी बमबारी का निशाना बना रहे हैं और अस्पतालों में इलाज के लिए जरूरी सुविधाओं को जानबूझ कर नष्ट कर रहे हैं। फलस्तीन के अस्पताल इजरायल द्वारा गाजा पट्टी की गई घेराबन्दी के चलते ताजा हमले से पहले भी बहुत मुश्किल हालतों में काम रहे हैं। दवाओं, सिरिंजों, पट्टियों और मेडिकल साजोसामान की कमी के साथ बिजली, पानी की सप्लाई की

कमी का भी सामना कर रहे हैं मगर 8 जुलाई से जारी इजरायली हमले के बाद हालत और खराब हो गई है। मगर दूसरी तरफ ऐसे भी डाक्टर और पैरामेडिकल स्टाफ के लोग हैं जो इन बदतर हालतों में भी घायलों के इलाज के अपने फर्ज से पीछे नहीं हट रहे हैं, और साथ ही इजरायली कुकर्मों के बारे में पूरी दुनिया को अवगत भी करवा रहे हैं। ऐसे ही एक डाक्टर नार्वे के **डा. मैड्स गिल्बर्ट** हैं जो फलस्तीन के सबसे बड़े अस्पताल अल-शिफा अस्पताल में काम कर रहे हैं।

इजरायली हमले में किस तरह से आम लोगों का कत्लेआम किया जा रहा है जिसमें मरने वाले आधे लोग बच्चे तथा औरतें है, डा. गिल्बर्ट उसके चश्मदीद गवाह हैं। न सिर्फ अभी के हमले में ही, डा. गिल्बर्ट 1970 से ही फलस्तीनी लोगों पर इजरायल द्वारा किए जा रहे जुल्मों के गवाह हैं। इजरायली बमबारी तथा जमीनी हमले में घायल लोगों में से आधे से ज्यादा लोगों को अल-शिफा अस्पताल में लाया जा रहा है जहाँ पर डा. गिल्बर्ट काम कर रहे हैं। उनके अनुसार, घायलों में ज्यादातर इस कदर तक जख्मी होते हैं कि ऐसे कुछ ही मरीजों को संभालने में अमेरिका के हर आधुनिक सुविधा से लैस बड़े अस्पतालों के भी हाथ-पाँव फूलने लगेंगे। लेकिन अल-शिफा के डाक्टर तथा मेडिकल स्टाफ ऐसे सौ से ज़्यादा लोगों को रोज देख रहे हैं और उनका इलाज कर रहे हैं। अस्पताल का स्टाफ 24-24 घण्टे लगातार काम कर रहा है, महीनों से उन्हें कोई तनखाह नहीं मिली है, उनकी आँखें नींद से भारी होती हैं, उनके चेहरे थकावट से पीले पड़े हुए हैं लेकिन घायल लोग लगातार आ रहे हैं जिनके इलाज से वो पीछे नहीं हट सकते। डाक्टरों तथा दूसरे मेडिकल स्टाफ की यह जिद इजरायली कातल गिरोहों की आखों में काँच का टुकड़ा बनी हुई है। नतीजतन, अस्पताल, मेडिकल स्टाफ, एंबुलैंस गाडियाँ भी बम्बार-जहाजों तथा टैंकों के निशाने पर हैं। बमबारी से तबाह इमारतों से घायलों को निकालने तथा अस्पताल तक पहुँचाने में लगी मेडिकल टीमों के कई लोग मारे जा चुके हैं और कितने ही खुद घायल हो कर अस्पताल में हैं। इजरायली फौज मेडिकल टीमों को घायलों को बाहर निकालने से रोक रही है और घायलों तक मेडिकल सहायता तक नहीं पहुंचने दे रही है। अल-शिफा अस्पताल के डायरेक्टर डा. नासर के घर को इजरायली जहाजों ने तबाह कर दिया है। अल-शिफा अस्पताल पर लगातार हमले हो रहे हैं, तो दूसरी तरफ गाजा के एक और अस्पताल अल-वफा को इजरायली बमबारी ने पूरी तरह से तबाह कर दिया है। अल-वफा अस्पताल गाजा का एकमात्र ऐसा अस्पताल था जहाँ पर अपने शरीर के अंग खो चुके, अपंग हो चुके मरीजों का इलाज पूरा होने पर उनको फिर से जीवन जीने लायक करने के लिए सुविधाएँ थीं। गाजा के अस्पतालों को बिजली सप्लाई करने वाला प्लांट भी इजरायल ने तबाह कर दिया है और जेनरेटर चलाने के लिए डीजल की भारी किल्लत है। जिन लोगों को इलाज के लिए फलस्तीन से बाहर भेजने की जरूरत है, उनके लिए फलस्तीन से बाहर निकलने के सारे रास्ते इजरायल तथा मिस्र ने बंद कर रखे हैं। यह जंग के क्रूरतम अपराधों में से एक है। मगर लातिनी अमेरिका के मुल्कों को छोड़कर दुनिया की तमाम सरकारें इन अपराधों पर चुप्प हैं, उल्टा इजरायल का समर्थन भी कर रही हैं।

गाजा पट्टी पर 2009 के इजरायली हमले के बाद डा. गिल्बर्ट ने एक टीवी इंटरव्यू में कहा था कि इतने भयानक घाव और वो भी इतनी बड़ी संख्या में, उन्होंने कभी नहीं देखे जितने उन्होंने गाजा पर इजरायल द्वारा की गई दस दिन की बमबारी के दौरान देखे। स्थिति इस बार उससे भी बुरी है। डा. गिल्बर्ट ने एक ताजा टीवी इंटरव्यू में बताया है कि इजरायली जियनवादी ऐसे बम-गोले इस्तेमाल कर रहे हैं जिनमें भारी धातूयों जैसे टंग्स्टन आदि के टुकड़े लगे रहते हैं। इन टुकड़ों का शिकार होने वाले लोगों के घाव बेहद डरावने होते हैं, ये एक तरह से आदमी के शरीर को चीर देते हैं, ये आदमी की हड्डियों को पूरी तरह से जला देते हैं। इसलिए ऐसे हथियारों का इस्तेमाल जंग के अपराधों में आता है मगर इजरायली हत्यारे लगातार इनका इस्तेमाल कर रहे हैं, और वो इसका इस्तेमाल आम लोगों पर कर रहे हैं। बिलकुल ऐसे अपराध इजरायल के सबसे बड़े समर्थक अमेरिकी साम्राज्यवाद ने वियतनाम में अंजाम दिए थे जब अमेरिकी सेना ने आम वियतनामी लोगों पर नापाम बम गिराए थे। नापाम एक ऐसा जलनशील तरल पदार्थ है जो बम फटने पर जिन लोगों पर गिरता था उनकी चमड़ी से चिपक जाता था और लगातार जलता रहता था जिस कारण आदमी की मौत बेहद भयानक होती थी, और अगर कोई बचता भी था वह जीवन जीने लायक ही नहीं रहता था। असल में दमनकारी ताकतें ऐसे हथियारों का इस्तेमाल करके आम लोगों में भय पैदा करना चाहती हैं और सोचती हैं कि दर्दनाक मौत, भयानक घावों से डरकर लोग अपनी अगुवाई करने वाले संगठन या पार्टी को समर्थन देना बन्द कर देंगे। लेकिन दुनिया में कहीं पर भी ऐसे हथकंडे अपने अधिकारों, अपनी आजादी के लिए लड़ रहे लोगों को झुकाने में कामयाब नहीं हुए हैं, उल्टा ऐसे अमानवीय कार्यों से शोषकों के प्रति लोगों की नफरत तथा लड़ने की इच्छा और मजबूत ही होती है। वियतनाम के लोगों ने इजरायल के आका अमेरिका को यही सबक सिखाया था लेकिन शोषक कभी भी सबक नहीं लेते, इसलिए लोग उनको बार-बार पाठ पढ़ाते हैं। फलस्तीन में भी इजरायल का हश्र यही होने वाला है। लेकिन इजरायल के ऐसे कुकर्मों के प्रति संयुक्त राष्ट्र की नपुंसक "आलोचना" ने एक बार फिर से इसको बेनकाब किया है। साथ ही, भारत सहत तमाम "लोकतंत्रिक" देशों का किरदार भी समूची दुनियां के सामने जाहिर किया है। भारत की "मोदी सरकार" ने तो संसद में इस मसले पर चर्चा तक नहीं होने दी, वैसे फासिस्टों से और कोई उम्मीद हो भी नहीं सकती।

डा. गिल्बर्ट का फलस्तीनी लोगों मुक्ति-संगर्ष से पुराना नाता रहा है। वे 1970 से फलस्तीन तथा लेबनान में काम रहे हैं। वे ऐसे डाक्टर हैं जिनके लिए मानवता की सेवा तथा जुल्म के ख़िलाफ़ संघर्षरत लोगों के साथ होकर लड़ने में मेडिकल विज्ञान की सार्थकता है, जिनके लिए मेडिकल विज्ञान जरूरत से ज़्यादा खाने और कोई काम न करने वाले परजीवियों के मोटापे को कम करने का विज्ञान नहीं है, जिनके लिए मेडिकल विज्ञान का ज्ञान पूँजीपतियों के खोले पांच-सितारा अस्पतालों में बेचने की चीज नहीं है और जिनके मेडिकल

विज्ञान का ज्ञान समूची मानवता की धारोहर है न कि मुठ्ठीभर अमीरों के घर की रखैल। वे आज के समय में डा. नार्मन बेथ्यून, डा. कोटनिस, डा. जोशुआ हॉर्न जैसे डाक्टरों की परम्परा को बनाए हुए हैं जिन्होंने वक्त आने पर लोगों का पक्ष चुना था। वे और उनके साथ काम करने अन्य कई डाक्टर तथा कर्मी इस बात का उदाहरण हैं कि आज भी ऐसे डाक्टर मौजूद हैं, भले ही अभी इनकी संख्या कम हो, जो बड़े-बड़े पैकेजों, आरामदायक जीवन को छोड़कर आम लोगों और उनके सुख-दु:ख से अपने जीवन को लेते हैं और इस लिए सही मायने में डाक्टर कहलवाने के योग्य हैं।

1970 से फलस्तीन तथा लेबनान में काम रहे डा. गिल्बर्ट इस बार भी दुनिया के तमाम लोगों को फलस्तीनी लोगों की मदद पर आने का संदेशा जारी करने वाले पहले लोगों में हैं और अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर फलस्तीनी लोगों का पक्ष रखने वाले तथा इजरायली जियनवादियों के अपराधों की पोल खोलने वाले लोगों में वह हमेशा अगली कतार में रहे हैं। लिहाजा जियनवादियों तथा साम्रज्यवादीयों की चौखट पर माथा रगड़ने वाला मीडिया, इनके टुकड़ों पर पलने वाले बुद्धिजीवी तथा राजनैतिक लोग उनके कट्टर विरोधी हैं। उनके अपने देश नार्वे में ही उनकी "आलोचना" करने वाले कम नहीं हैं। वहाँ की एक नेता सिव जेनसन ने उन्हें "इजरायल के खिलाफ प्रोपेगंडा करने वाला" कहा जिस पर किसी द्वारा कोई सेंसर न लगाने का उसे मलाल है। वैसे यह दिलचस्प है कि सिव जेनसन नार्वे की दक्षिणपंथी पार्टी की नेता हैं, जैसे कि भारत में श्रीमान मोदी जी हैं। ऐसी ही बातें फाक्स न्यूज तथा और कई साम्राज्यवादी मीडिया चैनलों, अखबारों में भी होती ही रहती हैं। इजरायल के लिए तो खैर डा. गिल्बर्ट "सरासर झूठ बोलने वाला" तथा "पागल" व्यक्ति हैं, जो अपनी कल्पना से कहानियाँ गढ़ता है और इजरायल को अफसोस है कि दुनिया भर में मेडिकल कर्मी उसकी बातों पर यकीन करते हैं। डा. गिल्बर्ट इसका एक ही जवाब देते हैं कि इजरायल गाजा की घेराबन्दी उठाकर लोगों को गाजा में आने दे और उन्हें देखने दे कि कौन झूठ बोल रहा है। ऐसा इजरायल कभी नहीं करने वाला, क्योंकि झूठ के पाँव नहीं होते। ऐसे समय में जब फलस्तीन के मुद्दे पर अमेरिकी लोकतन्त्र के ध्वजधारक ओबामा की अवाज फटने लगती है, फ्रांस के "समाजवादी" राष्ट्रपति ओलांदे ने फलस्तीन के लोगों के पक्ष में प्रदर्शन करने पर रोक लगा दी है, "अच्छे दिनों" की बेसुरी तुरही बजाने वाले मोदी ने भारत की सत्ता पर कब्जा कर लिया है, तो डा. गिल्बर्ट जैसे लोगों की आवाज सुनने तथा उसे ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक लेकर जाने की जरूरत बेहद बढ़ चुकी है। दूसरी तरफ, मेडिकल विज्ञान के क्षेत्र में भी, आज के समय में जब अधिकांश डाक्टर दवा कम्पनियों के कमीशन एजेंट बन चुके हैं और जब 'हिपोक्रेटस ओथ' डाक्टरों के लिए एक चोर द्वारा चोरी करने से पहले अपने भगवान का नाम लेने जैसा कुछ बन चुका है, डा. गिल्बर्ट ज़िन्दा जमीर वाले तथा डाक्टर बनने के लिए मेडिकल कालजों में दाखिला लेने वाले नौजवानों के प्रेरणास्रोत हैं। इस के साथ उनका जीवन यह भी दर्शाता है कि एक सच्चा इंसान चाहे वो जीवन के या विज्ञान के किसी क्षेत्र में हो, वह अपने समय में जारी व्यापक जनता के संघर्षों से अलग रहकर नहीं जी सकता, वो अपना पक्ष जरूर चुनता है, और बेशक वह जनता का पक्ष चुनता है।

● **नवगीत**

# एक बार फिर देश को दंगों की आग में झोंकने की सुनियोजित साज़िश

( पेज 1 से आगे )

धर्म के गलाघोंटू बंधनों को तोड़कर अपने जीवन का रास्ता बनाने लगते हैं तो जाति और धर्म के ठेकेदार उन्हें किस क़दर मसलकर किनारे लगा देते हैं। खरखौदा (मेरठ) की घटना की प्रारंभिक जाँच में ही यह बात साफ़ हो गयी है कि भाजपा के नेताओं ने इस काण्ड को साम्प्रदायिक रंग दिया। उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं था कि पीड़ित महिला को न्याय मिले। बिगड़ते हालात का अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि सुप्रीम कोर्ट को भी इस मामले को साम्प्रदायिक रंग न देने की हिदायत देनी पड़ी।

यह एक सच्चाई है कि साम्प्रदायिक फ़ासीवादी भाजपा तथा अपने आपको धर्म निरपेक्ष कहने वाले सभी चुनावी दल दंगों से होने वाले चुनावी लाभ की फ़सल काटते हैं। लेकिन यह समझना बड़ी भूल होगी कि फ़ासीवादी ताकतें इन कुकर्मों को सिर्फ़ वोट बटोरने के लिए ही अंजाम दे रही हैं। सच्चाई का दूसरा पहलू भी है और वह ज़्यादा ख़तरनाक है। लोकलुभावन जुमलेबाजी और ''अच्छे दिनों'' के झूठे सपनों को दिखलाकर मोदी भले ही केन्द्र की सत्ता पर काबिज़ हो गया हो, लेकिन पिछले दो माह में एक बात साफ़ हो गयी है कि उसका असली मक़सद पूँजीवाद की डूबती नैया को पार लगाना है। नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों को जितने नंगई और कुशलता के साथ मोदी ने लागू करना शुरू किया है उसके कारण बड़े-बड़े पूँजीपति घराने, बैंकों के मालिक, हथियारों के सौदागर, देश के तेल और गैस पर कब्ज़ा जमाये अम्बानी जैसे धनपशु, फिक्की, एसोचैम जैसी संस्थाएँ तथा मध्य वर्ग के लोग मोदी की शान में क़सीदे पढ़ रहे हैं। इन सभी लोगों को पता है कि कट्टर आर्थिक नीतियों को लागू करने के लिए जनता के हर प्रतिरोध को कुचलने की क्षमता मोदी के नेतृत्व वाली सरकार में ही है। संघ, भाजपा तथा मोदी भी इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि नव-उदारवादी नीतियों ने जिस तरह महँगाई, लगातार कम होती मज़दूरियाँ, बेरोज़गारी और भुखमरी के दानव को खुला छोड़ दिया है उससे त्रस्त जनता एक न एक दिन ज़रूर ही संगठित होकर मैदान में खड़ी हो जायेगी। इसी लिए साम्प्रदायिक फ़ासीवादी ताकतें देशभर में सीमित पैमाने के छोटे-बड़े दंगे करवा रही हैं। वो चाहते हैं कि मध्यम स्तर का साम्प्रदायिक तनाव समाज में लगातार बना रहे ताकि समय आने पर इसे पूरे ज़ोरों से भड़काया जा सके। इस तरह जनता के गुस्से को झूठा दुश्मन खड़ा करके जनता के ही ख़िलाफ़ इस्तेमाल करने की फ़ासीवादी सोच काम कर रही है।

मज़दूरों और मेहनतकशों को समझना होगा कि साम्प्रदायिक फ़ासीवाद पूँजीपति वर्ग की सेवा करता है। साम्प्रदायिक फ़ासीवाद की राजनीति झूठा प्रचार या दुष्प्रचार करके सबसे पहले एक नकली दुश्मन को खड़ा करती है ताकि मज़दूरों-मेहनतकशों का शोषण करने वाले असली दुश्मन यानी पूँजीपति वर्ग को जनता के गुस्से से बचाया जा सके। ये लोग न सिर्फ़ मज़दूरों के दुश्मन हैं बल्कि आम तौर पर देखा जाये तो ये पूरे समाज के भी दुश्मन हैं। इनका मुक़ाबला करने के लिए मज़दूर वर्ग को न सिर्फ़ अपने वर्ग हितों की रक्षा के लिए संघबद्ध होकर पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ एक सुनियोजित लंबी लड़ाई लड़ने की शुरुआत करनी होगी, बल्कि साथ ही साथ महँगाई, बेरोज़गारी, महिलाओं की बराबरी तथा जाति और धर्म की कट्टरता के ख़िलाफ़ भी जनता को जागरूक करते हुए अपने जनवादी अधिकारों की लड़ाई को संगठित करना होगा।

– तपीश

# श्रम कानूनों में "सुधार" के नाम पर मोदी सरकार का श्रम-अधिकारों पर हमला

( पेज 1 से आगे )

बिना देर किये 31 जुलाई को कारखाना अधिनियम, 1948, ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1948, ठेका मज़दूरी (नियमन और उन्मूलन) अधिनियम 1971, प्रशिक्षु अधिनियम (एप्रेंटिसस एक्ट) 1961 से लेकर तमाम अन्य श्रम-कानूनों को कमज़ोर और ढीला करने की कवायद शुरू कर दी। जहाँ पहले कारखाना अधिनियम 10 या ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल होता हो) तथा 20 या ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल न होता हो) वाली फैक्टरियों पर लागू होता था, अब इसे क्रमश: 20 और 40 मज़दूर कर दिया गया है। इस तरह अब मज़दूरों की बहुसंख्या को कानूनी तौर पर मालिक हर अधिकार से वंचित कर सकते हैं। दूसरे, ऐसे कदम से छोटे कारखाना मालिकों की भी बड़ी संख्या कारखाना अधिनियम के दायरे से बाहर हो जाएगी और मज़दूरों को इस कानून के तहत मिलने वाली सुविधाओं को प्रदान करने की जिम्मेदारी से उन्हें कानूनी तौर पर छुट्टी मिल जायेगी। आज देश की बहुसंख्यक मज़दूर आबादी छोटे-छोटे कारखानों और वर्कशॉपों में काम करती है। प्रस्तावित संशोधन के अमल में आने के बाद यह आबादी एकदम मालिकों ओर कारखानेदारों के रहमोकरम पर रहेगी क्योंकि इन मज़दूरों के अधिकारों की हिफाजत करने के लिए कोई कानून बचेगा ही नहीं! इसके अलावा सरकार एक माह में ओवर टाइम की सीमा को 50 घण्टे से बढ़ाकर 100 घण्टे करने की तैयारी में है। यह दूसरी बात है कि अभी भी ज़्यादातर कारखानों में मज़दूरों को हर सप्ताह 24 से लेकर 40 घण्टे तक ओवरटाइम करना पड़ता है जिसका भुगतान डबल रेट से न होकर सिंगल रेट से होता है और कहीं-कहीं पर तो उतना भी नहीं मिलता है। अब समझा जा सकता है जब कानून में ही 100 घण्टे के ओवरटाइम का प्रावधान हो जायेगा तो वास्तविकता में मज़दूरों को कितने घण्टे कारखानों का भीतर



खटना पड़ेगा! वहीं दूसरी तरफ मज़दूरों के लिए यूनियन बनाना और भी मुश्किल कर दिया गया है। पहले किसी भी कारखाने या कम्पनी में 10 प्रतिशत या 100 मज़दूर मिलकर यूनियन पंजीकृत करवा सकते थे पर अब ये संख्या बढ़कर 30 प्रतिशत कर दी गई है। ठेका मज़दूरों के लिए बनाया गया ठेका मज़दूरी कानून, 1971 भी अब 20 या इससे अधिक मज़दूरों वाली फैक्ट्री पर लागू होने की जगह 50 या इससे अधिक मज़दूरों वाली फैक्टरी पर लागू होगा। मतलब कि अब कानूनी तौर पर भी ठेका मज़दूरों की बर्बर लूट पर कोई रोक नहीं होगी। औद्योगिक विवाद अधिनियम में बदलाव करके यह प्रावधान किया जा रहा है कि अब 300 से कम मज़दूरों वाली फैक्टरी को मालिक कभी-भी बन्द कर सकता है और इस मनमानी बन्दी के लिए मालिक को सरकार या कोर्ट से पूछने की कोई ज़रूरत नहीं है! साथ ही फैक्टरी से जुड़े किसी विवाद को श्रम अदालत में ले जाने के लिए पहले कोई समय-सीमा नहीं थी, अब इसके लिए भी तीन साल की सीमा तय कर दी गयी है। प्रस्तावित संशोधनों में कारखानों में महिलाओं की रात की ड्यूटी पर पाबन्दियों को ढीला करना भी शामिल है। एपरेन्टिस एक्ट (प्रशिक्षु कानून) में संशोधन कर सरकार ने बड़ी संख्या में स्थायी मज़दूरों की जगह ट्रेनी मज़दूरों को भर्ती करने का कदम उठाया है। साथ ही किसी भी विवाद में अब मालिकों के ऊपर किसी भी किस्म की कानूनी कार्रवाई का प्रावधान हटा दिया गया है।

मोदी सरकार द्वारा श्रम कानूनों में बदलाव के पीछे वही घिसे-पिटे तर्क दिये जा रहे हैं जो 1990 के दौर में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को लागू करते समय दिये गये थे जैसे कि इन ''सुधारों'' से निवेश बढ़ेगा और रोज़गार बढेंगे। लेकिन अगर ऐसे सुधारों से रोज़गार बढ़ने होते तो 1991 से लेकर अभी तक मज़दूरों की बेरोज़गारी और शोषण में इतनी बढ़ोत्तरी नहीं हुई होती। ज़ाहिर है कि मोदी सरकार द्वारा उठाये जा रहे मज़दूर-विरोधी कदमों से मज़दूरों की लूट और बेकारी में और इज़ाफ़ा होगा। असल में श्रम कानूनों की धज्जियाँ उड़ाने का मकसद रोजगार बढ़ाना नहीं बल्कि पूँजीपतियों को मज़दूरों को लूटने के लिए और ज़्यादा छूट देना है। तभी तो इस बजट में पूँजीपति घरानों को 5.32 लाख करोड़ रुपये की भारी छूट दी गयी है। और यह यूँ ही नहीं हैं कि पूँजीपतियों की तमाम संस्थाएँ, सभी मीडिया घरानों और भाड़े के अर्थशास्त्री और बुद्धिजीवी मोदी सरकार के इन प्रस्तावित ''सुधारों'' का स्वागत खुली बाहों से कर रहे हैं। और ऐसा वे करें भी क्यों न? आखिर इतने कम समय के भीतर ही ''विकास'' के रास्ते के सभी स्पीडब्रेकरों को ठिकाने लाने की कवायद ''विकास पुरुष'' ने शुरू जो कर दी है!

## चुनावी पार्टियों और नकली वामपंथियों की ट्रेड यूनियनों की गद्दारी और मौकापरस्ती

ताज्जुब की बात नहीं है कि श्रम कानूनों में प्रस्तावित इन मज़दूर-विरोधी संशोधनों पर तमाम चुनावी पार्टियों और नकली वामपंथियों की संशोधनवादी ट्रेड यूनियनें एकदम चुप हैं। सीटू, एटक, ऐक्टू, इंटक, बीएमएस, एचएमएस आदि जैसी चुनावी पार्टियों की ट्रेड यूनियनें ज़ुबानी जमाखर्च करते हुए महज़ यह शिकायत कर रही हैं कि ये सभी संशोधन प्रस्तावित करने से पहले सरकार ने उनसे सलाह नहीं ली। यानी उन्हें इन संशोधनों पर कोई एतराज़ नहीं है बल्कि इस बात पर एतराज़ है कि ये संशोधन करने से पहले उनकी राय क्यों नहीं ली गयी! वैसे इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है। संसदीय वामपंथियों समेत सभी चुनावी पार्टियों की आज मज़दूरों को लूटने वाली और पूँजीपतियों के मुनाफ़े को बढ़ाने वाली नीतियों पर पूर्ण सहमति है। इसलिए उनके टुकड़ों पर पलने वाली ट्रेडयूनियनें भला मज़दूरों के हितों की हिफ़ाज़त क्यों करने लगीं? पहले भी 93 प्रतिशत ठेका व दिहाड़ी मज़दूरों की माँगों को ये यूनियनें उठाना छोड़ चुकी थीं। इसलिए मोदी सरकार द्वारा मज़दूरों पर इन ख़तरनाक हमलों पर ये ट्रेड यूनियनें चुप हैं या घड़ियाली आँसू बहा रही हैं।

सच तो यह है कि मज़दूर हितों पर यह फासीवादी हमला करने के लिए ही मोदी को पूँजीपतियों ने सत्ता में पहुँचाया था और अब उनके वफादार के तौर पर मोदी सरकार यह काम कर भी रही है। मौजूदा संकट में पूँजीपतियों की मुनाफे की दरें ख़तरनाक हदों तक नीचे गिर गयी हैं और इसीलिए पूँजीपति वर्ग अब मज़दूरों की लूट में थोड़ी-बहुत कानूनी बाधा पैदा करने वाले कानूनों को ख़त्म करवा रहा है। अगर देश का मज़दूर अपने ऊपर किये जा रहे इन हमलों का पुरज़ोर विरोध नहीं करता तो आने वाले समय में मज़दूरों से बंधुआ गुलामी करवाने के लिए मालिक वर्ग पूरी तरह आज़ाद हो जायेगा। श्रम कानूनों पर इन हमलों के ख़िलाफ़ हम चुनावी पार्टियों की ट्रेड यूनियनों या नकली वामपंथी ट्रेड यूनियनों पर भरोसा नहीं कर सकते जो मोदी सरकार के तलवे चाटने को तैयार बैठी हैं। तमाम संशोधनवादी ट्रेड यूनियनें भी मजदूरों के साथ पहले ही गद्दारी कर चुकी हैं। कई जुझारू मजदूर संघर्षों को हार और निराशा के गढ्ढे में धकेलना का श्रेय इन्हीं मौकापरस्त ट्रेड यूनियनों को जाता है। आज जरूरत इस बात की है कि हम स्वयं अपनी क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों व मज़दूर संगठनों के ज़रिये मजदूर हितों पर होने वाले इन फासीवादी हमलों का जवाब दें। इतिहास गवाह है कि फासीवाद को उसके अंतिम मुकाम तक पहुँचाने का काम मजदूर वर्ग ने ही किया है। अपने को देश का ''नम्बर वन मजदूर'' बताने वाला नरेन्द्र मोदी जिस फासीवादी गिरोह की अगुवाई कर रहा है उसे भी उसकी सही जगह तक भारत का मजदूर वर्ग जरूर पहुँचायेगा। और ऐसा पहली बार नहीं होगा। हिटलर और मुसोलिनी जैसे इनके पूर्वजों ने भी मजदूरों का नामलेवा बनकर ही सत्ता हथियाई थी और उनका हश्र क्या हुआ उससे हम सभी वाकिफ हैं। इसलिए आज आने वाले दिनों को कठिनाइयों से घबराने से काम नहीं चलेगा। इन चुनौतियों को समझना होगा और उनसे जूझने के लिए अपनी वर्ग एकजुटता को मजबूत करना होगा। जगह-जगह बिखरे हुए संघर्षों को एक सूत्र में पिरोते हुए एक नया क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन खड़ा करना होगा। मज़दूर अधिकारों पर इन फासीवादी हमलों और मज़दूर विरोधी कदमों का मुँह-तोड़ जवाब हम तभी दे पायेंगे।

●

# शिक्षा और संस्कृति के भगवाकरण का फासिस्ट एजेण्डा – जनता को ग़ुलामी में जकड़े रखने की साज़िश का हिस्सा है

मोदी सरकार के आने के बाद देश में शिक्षा व्यवस्था में बदलाव के लिए जिस तरह की बातें हो रही हैं या फिर जो बदलाव हो रहे हैं ऐसे माहौल में आपको यदि कोई गीता का "यथा संहरते चायम" (2/58) का यह हवाला देकर कहे कि भगवान कृष्ण चाय पीते थे तो ताज्जुब बिल्कुल भी मत करना! क्योंकि ऋग्वेद के ''अनश्व रथ'' (4/36/1) का हवाला देकर कुछ महानुभाव यह सिद्ध करने की कवायद में लगे हैं कि 'आर्यावर्त' के स्वर्णिम काल में हमारे देश के वायुमण्डल में हवाई जहाज उड़ा करते थे और पगडण्डियों पर कारें दौड़ा करती थी। स्टेम सेल, शल्य चिकित्सा, परमाणु ऊर्जा, टेलीविजन से लेकर तमाम वैज्ञानिक खोजों के बारे में पता चला है कि (आज जिसके बूते पर यूरोप ओर अमेरिका इतने 'उछल' रहे हैं) वे खोजें तो हमारी महान संस्कृति के कर्णधार हज़ारों साल पहले ही कर चुके हैं बस कमी यह रह गयी कि उस समय पेटेण्ट की कोई प्रणाली न होने के कारण इन वैज्ञानिक खोजों का कोई पेटेण्ट नहीं हो पाया।

शिक्षा और संस्कृति का भगवाकरण हमेशा ही फासिस्टों के एजेण्डा में सबसे ऊपर होता है। स्मृति ईरानी जैसी कम पढ़ी-लिखी, टीवी ऐक्ट्रेस को इसीलिए मानव संसाधन मंत्रालय में बैठाया गया ताकि संघ परिवार बेरोकटोक अपनी मनमानी चला सके।

पिछली 30 जून को जारी सर्कुलर के जरिए गुजरात सरकार ने राज्य के 42,000 सरकारी स्कूलों को निर्देश दिया कि वह पूरक साहित्य के तौर पर दीनानाथ बत्रा की नौ किताबों के सेट को शामिल करे। इन्हें पढ़ना सब बच्चों के लिए अनिवार्य होगा। दीनानाथ बत्रा नाम का यह शख्स राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़ी संस्था विद्या भारती का मुखिया है। इन किताबों में ऐसी-ऐसी "ज्ञान" की बातें हैं कि इन्हें पढ़ने वाले बच्चे आर.एस.एस. के प्रचारक भले बन जायें, अपनी ज़िन्दगी में वे घोर अज्ञानी और अवैज्ञानिक ही बनेंगे। इनके "ज्ञान" की कुछ बानगियाँ आप भी देखिये :

– भारत के नक्शे में पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नेपाल, भूटान, तिब्बत, बंगलादेश, श्रीलंका और म्यांमार अर्थात बर्मा भी शामिल है। ये सब "अखंड भारत" का हिस्सा हैं।

– अमेरिका आज स्टेम सेल रिसर्च का श्रेय लेना चाहता है, मगर सच्चाई यह है कि भारत के बालकृष्ण गणपत मातापुरकर ने शरीर के हिस्सों को पुनर्जीवित करने के लिए पेटेण्ट पहले ही हासिल किया है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस रिसर्च में नया कुछ नहीं है और डा मातापुरकर महाभारत से प्रेरित हुए थे। कुन्ती के एक बच्चा था जो सूर्य से भी तेज था। जब गान्धारी को यह पता चला तो उसका गर्भपात हुआ और उसकी कोख से मांस का लम्बा टुकड़ा बाहर निकला। व्यास को बुलाया गया जिन्होंने मांस के उस टुकड़े को कुछ दवाइयों के साथ पानी की टंकी में रख दिया। बाद में उन्होंने मांस के उस टुकड़े को 100 भागों में बाँट दिया और उन्हें घी से भरी टंकियों में दो साल के लिए रख दिया। दो साल बाद उसमें से 100 कौरव निकले। महाभारत में इस किस्से को पढ़ने के बाद मातापुरकर को अहसास हुआ कि स्टेम सेल की खोज उनकी अपनी नहीं है बल्कि वह महाभारत में भी दिखती है। ('तेजोमय भारत', पृष्ठ 92-93)

– आज सब जानते हैं कि टेलीविजन का आविष्कार स्कॉटलैंड के जॉन बेयर्ड ने 1926 में किया। मगर बत्रा जी के मुताबिक भारत के मनीषी योगविद्या के जरिए दिव्य दृष्टि प्राप्त कर लेते थे। टेलीविजन का आविष्कार यहीं से हुआ। महाभारत में, संजय हस्तिनापुर के राजमहल में बैठा अपनी दिव्य शक्ति का प्रयोग कर महाभारत के युद्ध का लाइव टेलिकास्ट अन्धे धृतराष्ट्र को ऐसे ही थोड़े दे रहा था! (पृष्ठ 64)

– हम जिसे मोटरकार के नाम से जानते हैं उसका अस्तित्व वैदिक काल में बना हुआ था। उसे 'अनश्व रथ' कहा जाता था। अनश्व रथ ऐसा रथ होता था जो घोड़ों के बिना चलता था, यही आज की मोटरकार है, ऋग्वेद में इसका उल्लेख है। (पृष्ठ 60)

ऐसे ही अनेकानेक ज्ञान के मोतियों से बत्रा की किताबें भरी हुई हैं। वैसे, इस तरह की बातें कहने वाला वह पहला शख्स नहीं है। संघियों का सारा साहित्य ऐसे दावों से भरा हुआ है। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए सुप्रीम कोर्ट के जज जस्टिस एआर दवे जी ने पिछले दिनों गुजरात में एक कार्यक्रम में फरमाया कि यदि वे देश के तानाशाह होते तो पहली कक्षा से ही पाठ्यक्रम में गीता और महाभारत को लागू करवा देते। और गुरु-शिष्य जैसी परम्पराएँ आज होतीं तो हिंसा और आतंकवाद आदि की दिक्कतों का हमें सामना ही नहीं करना पड़ता। इसीलिए हमें अपनी प्राचीन संस्कृति और परम्पराओं की तरफ वापस लौट जाना चाहिए। दरअसल दवे जी ने उस बात को शब्द दे दिये जो तमाम फासिस्ट मन ही मन करना चाहते हैं। यानी तानाशाह बनकर इस देश पर अपनी मनमानी थोपना!

इतिहास को तोड़ने-मरोड़ने के अपने अभियान के तहत नयी सरकार ने भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद जैसी सम्मानित संस्था का अध्यक्ष एक ऐसे व्यक्ति को बना दिया है जिसका इतिहासकार के तौर पर बस यही काम है कि महाभारत और रामायण को "ऐतिहासिक घटनाएँ" कैसे सिद्ध किया जाये।

यहाँ पर दो चीजें हैं, पहली है हमारी भारतीय संस्कृति की महानता का सवाल। क्या वाकई हमारे यहाँ

विज्ञान की तमाम खोजें हजारों साल पहले ही हो चुकी हैं? यह स्पष्ट कर दें कि दर्शन, नाट्य शास्त्र, गणित, भाषा विज्ञानं, खगोल शास्त्र से लेकर विज्ञान की तमाम शाखाओं में हमारे यहाँ उल्लेखनीय काम हुआ था और भरत, पाणिनि, कणाद, कपिल, आर्यभट्ट, सुश्रुत, चरक आदि पर कोई भी गर्व कर सकता है और करना भी चाहिए किन्तु पूरी दुनिया को मूर्ख साबित करना और ज्ञान-विज्ञान का ठेका खुद ही उठा लेना, इतिहास की महानता को साबित करने के चक्कर में झूठ का तूमार बाँध देना दिमागी कुपोषण को ही दिखाता है।

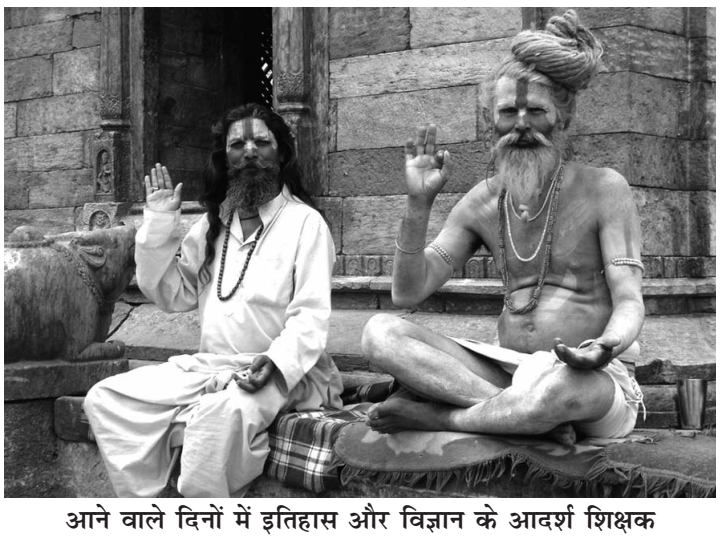

**आने वाले दिनों में इतिहास और विज्ञान के आदर्श शिक्षक**

हालाँकि प्राचीन भारत की महानता का दावा करने वाले ये लोग कभी यह नहीं बताते कि जब हमारे पुरखे इतने महान ज्ञानी-विज्ञानी थे तो फिर उनकी अगली पीढ़ियाँ अचानक से इतनी अज्ञानी और पिछड़ी कैसे हो गयीं? जब हम हज़ारों साल पहले ही कार और पुष्पक विमान पर चलते थे तो फिर क्या हुआ कि उसके बाद सैकड़ों साल तक हमारे पास लकड़ी के चक्कों वाली बैलगाड़ी ही रह गयी? आसमान में तरह-तरह की मिसाइलें (ब्रह्मास्त्र-परमास्त्र आदि) दाग कर युद्ध करने वाले इतने दरिद्र कैसे हो गये कि जो भी बाहर से आया, उन्हें हराकर लूट ले गया? स्टेम सेल पर रिसर्च करने वाले देश में लोग सैकड़ों साल तक मामूली बीमारियों से क्यों मरते रहे?

ज़ाहिर है, इन सब सवालों के जवाब संघ परिवार वालों के पास नहीं हैं। दरअसल, वे जवाब दे ही नहीं सकते। सारे ही फासिस्ट चाकरी तो पूँजीवाद की करते हैं लेकिन अपने एजेण्डा को लागू करने के लिए उन्हें लोगों की सोच को पिछड़ा बनाये रखने की दरकार होती है। इसीलिए वे हमेशा पुरानी दुनिया की बातें करते हैं। मिथकों को इतिहास बनाकर पेश करना उनका ख़ास एजेण्डा होता है ताकि लोग आगे की ओर देखने के बजाय पीछे ही देखते रहें। ताकि आम जनता बेहतर भविष्य के लिए लड़ने के बजाय गुज़रे हुए अतीत की यादों में ही खोयी रहे। बेशक अपने इतिहास में जो भी अच्छी चीजें रही हैं उन पर किसी को भी गर्व होना चाहिये और उनसे हमें प्रेरित होना चाहिए। किन्तु प्राचीन इतिहास को अतिश्योक्ति अलंकार की प्रयोगस्थली बना देना और इतिहास के अँधेरे खण्डहरों में कूपमण्डूकता की टार्च लेकर घूमना कहाँ की समझदारी है?

कुछ सांस्कृतिक उद्धारक हो सकता है यह तर्क दे दें कि हमारे तमाम ग्रंथों को अंग्रेज उठा ले गये जिससे हमारा देश ज्ञान-विज्ञान विहीन हो गया या उससे भी पहले विदेशी अक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया! इन तर्कों पर सिर्फ हंसा ही जा सकता है। कुछ हो सकता यह भी कहें कि सात्विक आचार-व्यवहार न होने के कारण पुराना ज्ञान-विज्ञान नाकाम साबित हो रहा है उनसे पूछना चाहिए कि विज्ञान अपने नियमों से चलता है सात्विक या तामसिक आचार व्यवहार से नहीं जैसे बन्दूक अपने नियमों से काम करेगी उस पर इस बात का कोई असर नहीं पड़ेगा कि ट्रिगर पर सात्विक-राजसी या तामसिक किस प्रवृति वाले इंसान की अंगुली है। भारतीय गुरुकुल परम्परा और ऋषि व्यवस्था के ढोल पीटने वाले खुद वल्लक धारण करके कन्दराओं में क्यों नहीं चले जाते ताकि विज्ञान में और भी प्रगति हो? वे वातानुकूलन यंत्र और गाड़ियों का इस्तेमाल क्यों करते हैं? वे अपने अनश्व रथ में ही रहें व महाभारत के संजय द्वारा अविष्कृत टेलीविजन का ही इस्तेमाल करें!

असल में हर समाज की तरह भारतीय समाज में भी अच्छी और बुरी दोनों तरह की चीजें रही हैं. दासप्रथा और सामन्ती समाज की तमाम बुराइयाँ हमारे समाज में भी थीं जिसके प्रमाण खुद रामायण-महाभारत में मिल जायेंगे। किसी लेखक का कर्तव्य यही होना चाहिये कि वह अच्छाइयों और बुराइयों दोनों का द्वन्द्वात्मक विश्लेषण करे और उन्हें समाज के सामने रखे। रही बात गीता ओर महाभारत को पढ़ने की तो सिर्फ ये ही क्यों बल्कि नाट्यशास्त्र, व्याकरण, उपनिषद्, वेद-वेदान्त आदि को भी पढ़ने में कोई हर्ज नहीं है बल्कि अध्ययन को केवल यहीं तक सीमित कर देने में हर्ज है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का दम भरने वाले गीता और महाभारत पर ही ब्रेक क्यों लगा लेते हैं? इन्हें अपने अज्ञान के कूप से बाहर निकलना इतना क्यों अखरता है? पढ़ने के लिए बहुत कुछ और भी है। हमें फाह्यान, मैगस्थनीज़, ह्वेन सांग, अल बरूनी, इब्न बतूता, मार्को पोलो आदि की भारत के बारे में रचनाओं को भी पढ़ना चाहिए। अरस्तू, सुकरात, प्लेटो से लेकर रूसो, वोल्तेयर, दिदेरो, मोंतेस्क्यू, दालम्बेर को भी पढ़ना चाहिए; हमें काण्ट, डार्विन, हेगेल, फ़ायरबाख़, मार्क्स आदि को भी पढ़ना चाहिए और यही नहीं भारत के निर्गुण भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तकों कबीर, नानक, दादू, तुकाराम, रैदास को भी पढ़ना चाहिए। भारत में भौतिकवादी दर्शन के प्रणेता कपिल, कणाद और चार्वाकों के बारे में भी जानना चाहिए। हमें उमर खय्याम, इब्न सीना, अल बतानी को भी पढ़ना चाहिए – यानी दुनियाभर में जो भी अच्छा साहित्य रचा गया है उस सब को पढ़ने की हमें भरपूर कोशिश करनी चाहिए। ज्ञान-विज्ञान को न तो भौगोलिक सीमाओं में कैद करना चाहिये तथा न ही तमाम कोशिश करने पर यह कैद होता ही है। और न ही यह किसी कौम की बपौती होना चाहिए, बल्कि दुनिया भर में मानवता के पक्ष में जो कुछ भी लिखा या रचा गया है वह पूरी मानवता की साझी धारोहर है। उसे सहेजने और आगे बढ़ाने का काम मानवता के सभी हितचिन्तकों का होना चाहिए। किन्तु तमाम तरह के फ़ासीवादी और कट्टरता के समर्थक झूठ और तथ्यों को मनमाने ढंग से प्रस्तुत करके अपना उल्लू सीधा करने की फ़िराक में रहते हैं। उनको ऐतिहासिक सच्चाइयों और इतिहास के प्रति एक सही नज़रिये से कोई मतलब नहीं होता। बल्कि मिथकों को पूजनीय बनाना और धार्मिक प्रतीकों का अपनी दक्षिणपंथी राजनीति के लिए इस्तेमाल करना इनका मुख्य शगल होता है। प्राचीन परम्परा से प्रेरणा लेना ठीक है लेकिन खच्चर की तरह आस-पास की चीजों को न देखना लकीर की फ़कीरी को ही दर्शाता है। गोयबल्स और पी.एन. ओक जैसों के दवे और बत्रा जैसे ये चेले अपनी जगह गुरु-शिष्य परम्परा का भली-भाँति अनुपालन कर रहे हैं।

**– अरविन्द**

# जनसंघर्ष को कुचलने के लिए पंजाब सरकार के फासीवादी काले कानून के खिलाफ़ पंजाब की जनता संघर्ष की राह पर

**पंजाब सरकार** द्वारा पारित घोर फासीवादी काले कानून 'पंजाब सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति नुकसान रोकथाम कानून-2014' को रद्द करवाने के लिए पंजाब के मज़दूरों, किसानों, सरकारी मुलाजमों, छात्रों, नौजवानों, स्त्रियों, जनवादी अधिकार कार्यकर्ताओं के संगठन संघर्ष की राह पर हैं। करीब 40 संगठनों का 'काला कानून विरोधी संयुक्त मोर्चा, पंजाब' गठित हुआ है। इसके आहवान पर 11 अगस्त को पंजाब के सभी जिलों में डी.सी. कार्यालयों पर रोषपूर्ण प्रदर्शन किए गए। जोशीले नारे लगाते हुए प्रदर्शनकारियों ने नुकसान रोकथाम के नाम पर जनान्दोलनों को कुचलने के लिए बनाए गए काले कानून को रद्द करवाने के लिए रोषपूर्ण आवाज बुलन्द की। हर जिले में डिप्टी कमिशनर को माँग पत्र सौंपे गए। पंजाब के गवरनर के नाम भेजे गए इन माँग पत्रों में पंजाब सरकार से इस कानून को रद्द करने की माँग करते हुए कहा गया कि अगर यह कानून रद्द नहीं किया जाता तो इसके खिलाफ़ भविष्य में उठने वाले जनसंघर्ष की जिम्मेदारी पंजाब सरकार की होगी।

बठिण्डा में प्रदर्शन को रोकने के लिए पुलिस ने करीब 300 प्रदर्शनकारियों को गिरफतार कर लिया। प्रदर्शन स्थल पर पहुँचने से रोकने के लिए विभिन्न जगहों पर नाके लगा दिए गए। इसके बावजूद में लोगों ने शहर में प्रदर्शन आयोजित किया और गिरफ्तारियाँ दीं।

लुधियाना में भारी बारिश के बावजूद बड़ी संख्या में जुटे ओद्योगिक मजदूरों, किसानों, सरकारी मुलाजिमों, नौजवानों ने जोरदार प्रदर्शन किया। शहर में औद्योगिक मज़दूरों ने प्रदर्शन से पहले श्रम विभाग से डी.सी. कार्यालय तक रोषपूर्ण पैदल मार्च भी किया।

पंजाब भर में हुए प्रदर्शनों में विभिन्न संगठनों के वक्ताओं ने कहा कि सरकार ने रैली, धरना, प्रदर्शन, हड़ताल आदि जनकार्रवाइयों के दौरान तोड़फोड़-अगजनी आदि रोकने के बहाने से यह कानून बनाया है लेकिन असल मकसद अधिकारों के लिए हो रहे जनसंघर्षों को कुचलना है। उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण की नीतियों के कारण आज मेहनतकश वर्गों की हालत बेहद खराब है। गरीबी, बेरोजगारी तेजी से बढ़ी है। जनता में आक्रोश है और जनसंघर्ष फैलते जा रहे हैं। इन हालात में जनता को जहां एक तरफ धर्मों-जातियों के नाम पर आपस में लड़ाकर बाँटने की कोशिशें हो रही हैं वहीं जनता पर दमन भी बढ़ते जा रहे हैं। हक, सच, इंसाफ़ के लिए संघर्ष कर रहे संगठन कभी भी अगजनी, तोडफोड़ जैसी कार्रवाइयाँ नहीं करते बल्कि सरकारों और पूँजीपतियों द्वारा ही ऐसी कार्रवाइयाँ जनसंघर्षों को बदनाम व विफल करने के लिए की जाती हैं। अब पंजाब सरकार ने इस कानून के जरिए संघर्ष करने वाले लोगों को पाँच साल तक की जेल, तीन लाख रुपए तक का जुर्माना और नुकसान पूर्ति की सख्त सजाएँ देने की फासीवादी साजिश रची है। नुकसान पूर्ति के लिए संघर्षशील लोगों की जमीनें जब्त करने के प्रावधान इस काले कानून में रखे गये हैं। हड़ताल को तो इस कानून के जरिए अप्रत्यक्ष रूप से गैरकानूनी बना दिया गया है।

केन्द्र में मोदी सरकार के गठन के बाद जनता पर पूँजीपति वर्ग का हमला और भी तेज़ हो गया है। श्रम कानूनों में मज़दूर विरोधी संशोधन किए जा रहे हैं। महँगाई में अत्यधिक वृद्धि हुई हैं। सब्सिडियों में भारी कटौती हो रही है। इन हालात में 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुकसान रोकथाम) बिल-2014' जैसे भयानक कानूनों के बिना हुक्मरानों की गाड़ी चल ही नहीं सकती।

वक्ताओं ने कहा कि पंजाब की जनता अपने अधिकारों के लिए संघर्ष के जनवादी अधिकार पर पंजाब सरकार का बर्बर हमला सहन नहीं करेगी। पंजाब सरकार सन् 2010 में भी ऐसे ही दो दमनकारी काले कानून लेकर आई थी। पंजाब के जुझारू लोगों ने व्यापक आन्दोलन के जरिए सरकार को दोनों कानून वापस लेने के लिए मजबूर कर दिया था। पंजाब के

जुझारू लोग इस बार भी पंजाब सरकार को इसके नापाक इरादों में कामयाब नहीं होने देंगे।

'काला कानून विरोधी संयुक्त मोर्चा, पंजाब' में भारतीय किसान यूनियन (एकता-उगराहां), जमहूरी किसान सभा, भारतीय किसान यूनियन (डकैंदा), किरती किसान यूनियन, पंजाब किसान यूनियन, पंजाब खेत मज़दूर यूनियन, ग्रामीण मज़दूर यूनियन, देहाती मज़दूर सभा, टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, नौजवान भारत सभा, पंजाब स्टूडेंट यूनियन, पंजाब स्टूडेंट फेडरेशन, इंकलाबी नौजवान विद्यार्थी मंच, डेमोक्रेटिक स्टूडेंटस फेडरेशन, शहीद भगत सिंह नौजवान सभा, स्त्री जागृति मंच, जनवादी स्त्री सभा, भारतीय किसान यूनियन क्रान्तिकारी, किसान संघर्ष कमेटी, क्रान्तिकारी ग्रामीण मज़दूर यूनियन, सी.टी.यू., मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्ज यूनियन, लोक सांस्कृतिक मंच, लोक मोर्चा पंचाब, टेक्नीकल सर्विसेस यूनियन, डेमोक्रेटिक लॉयर्स एसोसिएशन, पंजाब निर्माण मज़दूर यूनियन, मज़दूर मुक्ति मोर्चा, पंजाब सबार्डीनेट सर्विसेस यूनियन आदि संगठन शामिल हैं। अन्य बहुत से जनसंगठनों का समर्थन व सहयोग भी इस संयुक्त मोर्चे को हासिल है।

## काले कानून के खिलाफ अर्थी फूंक प्रदर्शन

शोषण-अन्याय के खिलाफ़ जनता की आवाज़ दबाने के लिए पंजाब सरकार द्वारा पारित काले कानून के विरुद्ध अगस्त के रोषप्रदर्शनों की तैयारी के लिए 5 अगस्त से 10 अगस्त तक गाँवों-मोहल्लों, बस्ती, तहसील आदि स्तरों पर पंजाब सरकार की अर्थियाँ फूँकी गईं। जिला लुधियाना और जिला फतेहगढ़ साहिब में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, कारखाना मज़दूर यूनियन और नौजवान भारत सभा ने भी काले कानून के खिलाफ़ अर्थी फूंक प्रदर्शन आयोजित किए। टेक्सटाइल हौज़री कामगार यूनियन ने ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी, पुडा मैदान और मेहरबान में अर्थी फूंक प्रदर्शन किए। कारखाना मज़दूर यूनियन ने ढण्डारी खुर्द व राजीव गाँधी कालोनी में अर्थी फूंक प्रदर्शन आयोजित किए। नौजवान भारत सभा ने मण्डी गोबिन्दगढ़, पख्खोवाल, जोधां आदि जगहों पर टी.एस.यू., डी. ई.एफ., आर.टी.आई. एक्टीविस्ट ग्रुप आदि संगठनों से साथ साझे रूप में प्रदर्शन किए।

प्रदर्शनों के दौरान वक्ताओं ने कहा कि रैली, हड़ताल, धरना, प्रदर्शन, जुलूस आदि के दौरान नुकसान को रोकने के पर सरकार वास्तव में जनता को हक, सच, इंसाफ़ के लिए एकजुट होकर आवाज उठाने और संघर्ष करने से रोकना चाहती है। अब सरकार काला कानून पास करके इन कार्रवाइयों के लिए संघर्ष करने वालों को 5 साल तक की जेल, 3 लाख तक का जुर्माना व नुकसान पूर्ति की सख्त सजाएँ देने की साजिश रच रही है। वक्ताओं ने कहा कि मजदूरों की हड़ताल के दौरान पूँजीपति को होने वाले घाटे को भी इस कानून के तहत अपराध में रखा गया है जिसके लिए हड़ताली मजदूरों को और उनके नेताओं को जेल, जुर्माने व नुकसान पूर्ति करने की सख्त सजाएँ दी जाएँगी। हड़ताल को पंजाब सरकार ने इस कानून के जरिए अप्रत्यक्ष रूप में कानूनन अपराध घोषित कर दिया है।

वक्ताओं ने कहा कि सरकार का मकसद जनता के संघर्षों को कुचलना ही है। केन्द्र व राज्य सरकारों की पूँतिपतियों के पक्ष में लागू की जा रही निजीकरण, उदारीकरण, विश्वीकरण की नीतियों की जनता की हालत बेहद खराब कर दी है। गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई तेजी से बढ़ी है। इसके खिलाफ जनता के एकजुट रोष भी बढ़ता जा रहा है। हुक्मरान आने वाले दिनों में उठ खड़े होने वाले भीषण जनान्दोलनों से भयभीत है। जनता की आवाज सुनने की बजाए सरकारें जन आवाज को ही कुचल देना चाहती हैं। इसीलिए अब काले कानून बनाए जा रहे हैं। पंजाब सरकार द्वारा पारित यह नया काला कानून भारतीय हुक्मरानों के घोर जनविरोधाी दमनकारी चरित्र को जाहिर करता है।

वक्ताओं ने कहा कि पंजाब की जनता को अपने जनवादी अधिकारों पर हुक्मरानों का यह बर्बर हमला कतई बर्दाश्त नहीं करना चाहिए और इस काले कानून को जुझारू जनान्दोलन के जरिए रद्द करवाना होगा।

**– बिगुल संवाददाता**

# हिन्दू दिलों और बुर्जुआ दिमागों को छूकर चीन से होड़ में आगे निकलने की क़वायद

**(पेज 16 से आगे)**

मोदी ने धार्मिक प्रतीकों एवं मिथकों का इस्तेमाल कर नेपालवासियों को पुचकारने के साथ ही साथ अपने को मानवतावादी एवं नेपालियों का हितैषी सिद्ध करने के लिए एक अन्य पाखण्डपूर्ण हथकण्डा अपनाया जिसकी कलई अगले ही दिन सोशल मीडिया पर खुल गयी। अपनी यात्रा के दौरान मोदी ने अपने ट्विटर अकाउंट से जीतबहादुर नामक एक शख़्स की तस्वीर साझा करते हुए यह दावा किया कि उन्होंने उसको 16 साल बाद उसके बिछड़े परिवार से मिलाया। लेकिन अगले ही दिन सोशल मीडिया पर मोदी के इस फर्जीवाड़े की असलियत उजागर हो गयी जब यह बात सप्रमाण सामने आयी कि वह शख़्स 2012 में ही अपने परिवार से मिल चुका था।

मोदी ने नेपाल की संविधान सभा में अपने भाषण के दौरान नेपाल में जारी संविधान निर्माण की प्रक्रिया पर भी टिप्पणी की। उनकी टिप्पणियों से नेपाल में राजशाही को वापस लाने का ख़्वाब देख रहे लोगों को थोड़ी निराशा हुई होगी क्योंकि उन्होंने संघीय लोकतांत्रिक गणतंत्रिक व्यवस्था के प्रति अपना समर्थन जताया। दरअसल भारत का बुर्जुआ वर्ग अब यह बात अच्छी तरह से जान चुका है कि नेपाल में राजशाही इतिहास के कूड़ेदान की चीज़ हो चुकी है। मोदी ने अपने भाषण में भी यह साफ़ किया कि वह जल्द से जल्द नेपाल में एक नये संविधान को बनते देखना चाहते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मोदी सरकार की मंशा अब वहाँ भारत की ही भाँति एक अतिसीमित जनवादी अधिकार प्रदान करने वाले बुर्जुआ संघीय लोकतांत्रिक ढाँचे को जल्द से जल्द स्थापित करने की है ताकि वहाँ भारतीय पूँजीपतियों के हितों की हिफ़ाजत करने वाली एक सरकार बन सके।

नेपाली संविधान सभा में दिये गये भाषण में मोदी ने नेपालियों की बहादुरी की प्रशंसा करते हुए कहा कि भारत ने एक भी लड़ाई ऐसी नहीं जीती जिसमें किसी नेपाली ने रक्त न बहाया हो। इस बात पर संविधान सभा के सदस्य मेज थपथपाकर मोदी का अभिवादन करने लगे मानो उनकी हीन ग्रंथि तुष्ट हो गयी हो। मजे की बात यह है कि मेज थपथपाने वालों में प्रचण्ड और भट्टराई भी शामिल थे। ये वही प्रचण्ड और भट्टराई हैं जो कभी भारतीय सेना में गोरखा लोगों की भर्ती का पुरज़ोर विरोध किया करते थे। ये दोनों ही प्रचण्ड "माओवादी" मोदी के पूरे भाषण के दौरान संविधान सभा के अन्य सदस्यों की ही भाँति मोदी के पुचकारने वाली अदा पर पूरी तरह फ़िदा दिखे। भाषण के दौरान मोदी ने कई बार इस बात को रेखांकित किया कि नेपाल ने युद्ध को छोड़ बुद्ध को, शस्त्र को छोड़ शास्त्र को एवं बुलेट को छोड़ बैलट को अपनाकर पूरी दुनिया में नयी मिसाल क़ायम की है। बुर्जुआ संसद के सुअरबाड़े में में लोट लगाने की ठान चुके नेपाली "माओवादियों" को मानो इसमें प्रशंसा के स्वर सुनायी पड़े। यही नहीं मोदी से मुलाकात के दौरान प्रचण्ड ने कहा कि "आपने न केवल नेपालियों के मन को छुआ है बल्कि उनके दिलों को भी जीता है।" बाद में पत्रकारों को दिये बयान में भी प्रचण्ड ने मोदी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और मोदी की नेपाल यात्रा को ऐतिहासिक बताया। साफ़ है कि जंगल के ऊबड़-खाबड़ रास्ते से होते हुए संसद के आलीशान गलियारे की यात्रा से आगे बढ़कर "प्रचण्ड पथ" अब फ़ासीवाद की चरणवंदना तक जा पहुँचा है। यदि किसी को अब भी यह मुग़ालता है कि नेपाली क्रान्ति की गाड़ी पटरी से नहीं उतरी है तो इसे हद दर्ज़े का भोलापन अथवा मूर्खता ही कहा जायेगा।

**– आनन्द सिंह**

# ब्रिटिश सैनिकों की अन्धकार भरी ज़िन्दगी की एक झलक

**ब्रिटिश सेना** के एक पूर्व सैनिक को 16 जनवरी 2014 को ब्रिटेने की की एक अदालत ने अपनी नन्ही बेटी का कत्ल करने के दोष में 6 साल की सजा सुनाई। लिआम कल्वरहाऊस नाम का यह सैनिक अफगानिस्तान युद्ध में तैनात किया गया था। युद्ध के दौरान एक हमले में उसने अपनी आँखों के सामने अपने पांच साथियों को मरते हुऐ देखा और अपनी दायीं आँख को भी खो दिया। युद्ध के हालात ने उसे भारी मानसिक चोट और मानसिक बीमारी का पीड़ित बना दिया। वो जल्द ही गुस्से में आ जाता और खुद पर नियंत्रण खो देता। इस बीमारी के कारण उसकी सेना की नौकरी खत्म कर दी गई। घर में उसे अपनी 7 महीने की बेटी का रोना सहन नहीं होता था। इसलिए उसने लड़की के साथ बुरी तरह मारपीट कर दी। बच्ची की जगह-जगह से हड्डियाँ टूट गईं। डेढ़ साल तक हस्पताल में इलाज चलने के बाद आखिर लड़की की मौत हो गई।

यह दर्दनाक घटनाक्रम सिर्फ एक ब्रिटिश सैनिक के हालात नहीं बताता बल्कि ब्रिटिश सेना के मौजूदा और पूर्व सैनिकों की एक बड़ी संख्या की हालत को बताता है। युवाओं को एक अच्छे, देशभक्तिपूर्ण, बहादुरी और शान वाले रोजगार का लालच देकर ब्रिटिश सैना में भर्ती किया जाता है। सर्वोत्तम बनो, दूसरो से ऊपर उठो जैसे लुभावने नारों के जरिए युवाओं का ध्यान सेना की तरफ खींचा जाता है। दिल लुभाने वाले बैनरों, पोस्टरों, तस्वीरों के जरीए ब्रिटिश सैना की एक गौरवशाली तस्वीर पेश की जाती है। लेकिन ब्रिटिश सेना की जो लुभावनी तस्वीर पेश की जाती है उसके पीछे एक बेहद भद्दी (असली) तस्वीर मौजूद है। वियतनाम युद्ध के बाद सैनिकों के हालात को लेकर ब्रिटिश सेना के सर्वेक्षण शुरू हुए थे। अक्तूबर 2013 में ब्रिटिश सेना के बारे में 'फोर्सस वाच संस्था' ने 'दी लास्ट ऐम्बुश' नाम की एक रिपोर्ट जारी की। यह रिपोर्ट डेढ सौ स्रोतों से जानकारी जुटा कर तैयार की गई। इन स्रोतों में ब्रिटिश सेना की तरफ से जारी की गई 41 रिर्पोटें और पूर्व सैनिकों के साथ बातचीत भी शामिल है। फोर्सेस वाच का खुद का कहना है कि सेना के नियंत्रण में होने वाले सर्वेक्षण में पूरी सच्चाई बाहर नहीं आती। लेकिन इनके अधार पर तैयार की गई रिपोर्ट ब्रिटिश सैनिकों की अँधेरी ज़िन्दगी की तस्वीर के एक हिस्से को तो उजागर करती है।

इस रिपोर्ट में यह बात काफी उभरकर सामने आई है कि ब्रिटिश गरीब आबादी से भर्ती किये गये सैनिकों को अमीर आबादी से भर्ती किये गये सैनिकों के मुकाबले ज्यादा मुश्किल और खतरनाक मोर्चो पर भेजा जाता है। इस तरह गरीब पृष्ठभूमि वाले सैनिकों को ज्यादा मुसीबतें और नुकसान उठाना पड़ता है।

ब्रिटिश सैना में भारी मानसिक चोट के चलते मानसिक विकार (पी.टी.एस.डी.) की बीमारी बड़े पैमाने पर फैली है। उपलब्ध स्रोतों के अधार पर लगाये गये हिसाब के मुताबिक जिन सैनिकों को इराक और अफगानिस्तान युद्ध में तैनात किया गया था उनमें यह बीमारी आम ब्रिटिश नागरिकों से 20 प्रतिशत ज्यादा है। आम नागरिकों का 2.7 प्रतिशत हिस्सा इस बीमारी से पीड़ित है। जबकि इराक और अफगानिस्तान में तैनात किये गये सैनिकों का 3. 2 प्रतिशत हिस्सा इस बीमारी से पीड़त है। जंग के मोर्चों पर तैनात किये गये सैनिकों का 22.5 प्रतिशत हिस्सा अल्कोहल के जरूरत से अधिक इस्तेमाल का शिकार है जबकि अन्य सैनिकों और आम नागरिकों में यह दर क्रमश 14.2 प्रतिशत और 5.4 प्रतिशत है। रिपोर्ट बताती है कि ब्रिटिश सैनिकों में मानसिक बीमरियाँ आम नागरिकों से 30 प्रतिशत ज्यादा है।

ऐसे सैनिक जिन्होंने पिछले 10 सालों में सेना छोड़ी है, उनमें पी.टी.एस.डी., अल्कोहल के जरूरत से अधिक इस्तेमाल, आम मानसिक बीमारियों और खुद को चोट पहुँचाने की प्रवृत्तियाँ आम लोगों और मौजूदा सैनिकों से काफी ज्यादा है। पूर्व सैनिकों में मानसिक बिगाड़ की दर मौजूदा सैनिकों से ज्यादा होने के कारण यह भी हो सकता है कि पूर्व सैनिकों के बारे में जानकारी जुटाना अधिक आसान है। मौजूदा सैनिकों के बारे में तो बहुत कम जानकारी हासिल हो पाती है। रिपोर्ट के आँकड़े बताते हैं कि इराक और अफगानिस्तान युद्ध में तैनात किये गये पूर्व सैनिकों में पी.टी. एस.डी मानसिक रोग और अल्कोहल का दुरुपयोग आम लोगों से 3 गुना ज्यादा है। आम मानसिक विकार पूर्व ब्रिटिश सैनिकों में 90 प्रतिशत ज्यादा है। पूर्व सैनिकों में हिंसक प्रवृतियाँ आम लोगों से काफी ज्यादा होती हैं।

अध्ययन में यह बात सामने आई है कि इराक युद्ध में शामिल पूर्व सैनिकों का 12.6 प्रतिशत हिस्सा अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ हिंसक व्यवहार करता है। सेना की नौकरी छोड़ देने के बाद अकसर सैनिकों को आम लोगों में घुलने-मिलने की समस्या आती है। सामाजिक सहारा न मिलने के चलते सैनिकों में मानसिक रोग और बढ़ जाते हैं।

गरीब लोगों से भर्ती हुए सैनिक इन मानसिक रोगों का ज्यादा शिकार होते हैं। गरीब आबादी लूट-शोषण का शिकार होने के कारण पहले ही मानसिक परेशानियों और मानसिक रोगों का ज्यादा शिकार होती है। इस आबादी से सैना में 'देश सेवा' के लिए भर्ती हुए युवाओं को सेना में लूट, शोषण, उत्पीड़न, अन्याय सहना पड़ता है। ज्यादा मुश्किल और खतरनाक मोर्चो पर उनको ही भेजा जाता है। इन मोर्चों पर भारी मानसिक चोट पहुँचने के आसार ज्यादा होते है। पी.टी.एस.डी. रोग से सम्बन्धित खोज में यह बात सामने आई है कि समाज के निचले वर्ग के लोगों के लिए यह रोग ज्यादा नुकसान पहुँचाता है। इसके साथ ही सेना के ऊपर के स्थानों पर बैठे अधिकारियों से अपमान और उत्पीड़न सहना पड़ता है। पूँजीपतियों के साम्राज्यवादी लुटेरे हितों की खातिर इराक, अफगानिस्तान में जाकर बच्चों, औरतों सहित बेगुनाह लोगों का खून बहाना पड़ता है। अपनी आँखों के सामने अपने साथियों और बेगुनाह लोगों को मरते और अपाहिज होते देखना पड़ता है। ये सारे हालात उनके मन पर भयंकर असर डालते हैं।

ब्रिटिश सेना में 'सर्वोत्तम बनने', 'सब से ऊपर उठने वाले' एक अच्छे पेशे का सपना लेकर भर्ती हुए ब्रिटिश युवाओं के लिए सेना की नौकरी मानसिक परेशानियों-विकारों-रोगों के गहरे गढ्ढे में गिरने का कारण बन जाती है। पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के लुटेरे हितों को पूरा करने के लिए बनाये गये ब्रिटिश सैनिक ढाँचे से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है? ब्रिटिश सैनिकों की तरह अन्य सभी पूँजीवादी देशों के सैनिक भी इसी तरह अन्धकार भरी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर हैं। यह चाहे अमेरिका, फ्रांस, जैसे विकसित पूँजीवादी देश हों और चाहे भारत, चीन, पाकिस्तान, बंगलादेश जैसे पिछड़े पूँजीवादी देश हों सब जगह सैनिकों के कम या अधिक ऐसी ही परिस्तिथियाँ हैं।

**- लखविन्दर**

# हर साल इस आदमखोर पूँजीवादी व्यवस्था की भेंट चढ़ जाते हैं हज़ारों मासूम

इस साल जनवरी 2014 से लेकर अब तक जापानी इंसेफेलाइटिस(जेई) और एक्यूट इंसेफेलाइटिस (ऐई) के कारण पूर्वी उत्तर प्रदेश स्थित गोरखपुर जिले में 130 बच्चों की जान जा चुकी हैं (गोरखपुर न्यूज लाइन, 2 अगस्त 2014)। इसके अलावा, असम में भी जापानी इंसेफेलाइटिस का कहर जारी है, जिसके चलते अब तक इस बीमारी के कारण 388 लोगो की जान जा चुकी हैं (न्यूज टाइम्स असम, 8 अगस्त 2014)। गोरखपुर में सन 1978 में जापानी इंसेफेलाइटिस के पहले मरीज की पुष्टि होने के बाद से लेकर अब तक लगभग 50,000 से ज्यादा बच्चे इस बीमारी की चपेट में आकर काल के ग्रास में समा चुके हैं। स्थिति कितना भयंकर रूप ले चुकी है इसका अँदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अब यह बीमारी देश के अन्य 19 राज्यों के 171 जिलो में अपने पैर पसार चुकी है, जिनमें तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, और असम जैसे राज्य शामिल हैं।

अगर सिर्फ पूर्वी उत्तर प्रदेश की ही बात करे तो इस झेत्र मे रहने वाले करोड़ों लोगों के लिए बीआरडी मेडिकल कालेज गोरखपुर को छोड़कर दूसरा कोई उच्च स्तरीय चिकित्सा संस्थान नही हैं। इसके अलावा, बीआरडी मेडिकल कालेज ही वह एकमात्र अस्पताल हैं जहाँ

जापाना इसफलाइटस और एक्यूट इंसेफेलाइटिस का इलाज संभव हैं। इसलिए यहाँ हर साल न सिर्फ गोरखपुर, बल्कि बिहार और नेपाल से भी जापानी इंसेफेलाइटिस और एक्यूट इंसेफेलाइटिस के मरीज अपना ईलाज करवाने के लिए आते हैं। परन्तु इस अस्पताल के पास भी मरीजो की इतनी बड़ी संख्या को उचित चिकित्सा प्रदान करने के लिए न तो पर्याप्त संख्या में डॉक्टरो की टीम है, और न ही वेंटीलेटर, आक्सीजन, तथा दवाईयाँ। इसी के चलते बहुत सारे मरीज तो सिर्फ समय पर ईलाज न मिलने के कारण ही दम तोड़ देते हैं।

जापानी इंसेफेलाइटिस, क्यूलेक्स विश्नोई नामक एक मच्छर जो कि मुख्यत: धान के खेतों, तथा गंदे पानी वाले गाँवों मे पाया जाता है के काटने से फैलती हैं। इस बीमारी के मुख्य स्रोत सूअर होते है, जिनके शरीर में अन्य पक्षियों और जानवरों की उपेक्षा जापानी इंसेफेलाइटिस का विषाणु तेजी से फैलता है, और फिर यही से होता हुआ मानव शरीर में पहुँच जाता है। परन्तु ऐसा भी नहीं है कि यह कोई लाईलाज बीमारी हो, जबकि असलियत तो यह है कि न सिर्फ इसका ईलाज संभव है, बल्कि सघन टीकाकरण, तथा साफ-सफाई, जैसे कुछ जरूरी कदम उठा इसको हर साल फैलने से भी रोका जा सकता हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण तो जापान है, जिसने बहुत साल पहले ही टीकाकरण के द्वारा इस पर पूरी तरह से काबू पा लिया था। परंतु अगर भारत कि बात करे तो स्थिती इसके एकदम विपरीत हैं, तमिलनाडु के वेल्लोर जिले में जापानी इंसेफेलाइटिस का पहला मामला सामने से लेकर अब तक हजारों बच्चो की मौत के बावजूद सरकार के कान पर जूँ तक नही रेंगी हैं। जबकि उन्हे पता हैं कि हर साल मानसून के शुरु होते ही जापानी इंसेफेलाइटिस और एक्यूट इंसेफेलाइटिस के मामलों में तेजी से बढ़ोतरी होती है, परंतु सरकार और प्रशासन की नींद तब तक नही टूटती जब तक की कई हजार बच्चे बेमौत मारे न जाएँ। इस पर भी बेशर्मी की हद यह है कि सरकार सिर्फ 1-2 लाख रुपए का मुआवजा दे अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लेती हैं (वैसे भी मुआवजे कि रकम भी कुछ ही परिवारों को मिल पाती हैं) जैसे इंसानी जान की कीमत महज कुछ चंद रुपए हों।

वैसे तो हर साल इस बीमारी की रोकथाम के लिए अस्पतालों को बेहतर बनाने और जर्जर पड़ी स्वास्थय सुविधाओं को सुधारने के नाम पर करोड़ो रुपए की घोषणाएँ की जाती है, परन्तु जमीनी स्तर पर हालात में कोई फर्क नही पड़ता हैं। यह भी एक विडंबना है कि सरकार आतंकवाद को इस देश का सबसे बड़ा खतरा बताती है, जबकि असलियत में बम धमाकों से भी ज्यादा लोग डेंगू, मलेरिया, तथा जापानी इंसेफेलाइटिस जैसी बीमारियों के कारण मारे जाते हैं। अगर सरकार अपने कुल बजट में स्वास्थय पर होने वाले खर्च को थोड़ा सा भी बढ़ा दे तो भी जनता को निशुल्क स्वास्थय सुविधाएँ प्रदान की जा सकती हैं। परंतु वह ऐसा नही करेंगी, क्योंकि सरकार को ईलाज के अभाव में हर क्षण दम तोड़ रहे बच्चों से ज्यादा पूँजीपतियों के मुनाफे की ज्यादा चिंता हैं।

हर समय सोवियत संघ और चीन के महान समाजवादी प्रयोगों पर कीचड़ उछालने वाले तमाम बुर्जुआ खबार और टी.वी चैनल लोगो को यह नहीं बताते है कि कैसे इन देशो ने क्रांति संपन्न होने के कुछ ही सालों पश्चात न सिर्फ उस समय लाइलाज समझी जाने वाली बीमारियों पर काबू पा लिया था, बल्कि जनता को निशुल्क स्वास्थय सुविधाएँ प्रदान कर उनके जीवनस्तर मे कई गुना इजाफा कर डाला। ऐसे में सवाल यह उठता है कि जो सरकार फिर चाहे वह किसी भी पार्टी की हो, मेहनतकश जनता को स्वास्थय, शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाएँ देने में अक्षम हो, जिसके मंत्री अपने कानो में रूई ठूस अपने मखमली बिस्तरो पर सोते हों, ताकि दर्द से बिलखते इन बच्चो की चीखों से उनकी नींद खराब न हो जाये तो क्या इन तमाम चुनावी पार्टियों को सत्ता में बने रहने का कोई हक हैं? क्या हमें ऐसी आदमखोर व्यवस्था के खिलाफ आवाज बुलंद नही करनी चाहिए? इसलिए साथियो, अगर हम चाहते है कि हमारी आने वाली पीढियाँ इस तरह बेमौत न मारी जायें तो हमें अभी से बिना कोई वक्त गँवाए लूट-खसूट पर टिकी इस पूरी पूँजीवादी व्यवस्था को बदलने के लिए एक-एक कदम आगे बढ़ाना होगा।

**– मनन विज**

# सर्वहारा वर्ग तथा सर्वहारा की पार्टी

## • जोसेफ स्तालिन

वो दिन गये जब लोग सीना तानकर घोषणा करते थे "रूस, एक और अविभाज्य है।" आज एक बच्चा भी जानता है कि अब "एक और अविभाज्य" रूस जैसी कोई चीज़ नहीं रही, कि बहुत पहले ही रूस दो विरोधी वर्गों में बँट चुका है - पूँजीवादी वर्ग एवं सर्वहारा वर्ग। आज यह किसी के लिए रहस्य नहीं है कि इन दो वर्गों के बीच का संघर्ष वह धुरी बन गया है जिसके चारों ओर हमारी आज की ज़िन्दगी चक्कर काट रही है।

फिर भी, अभी हाल तक इस सब पर ध्यान जाना कठिन था, कारण यह कि अब तक हमने संघर्ष के अखाड़े में कुछ व्यक्तिगत ग्रुपों को ही देखा था, क्योंकि अलग-अलग ग्रुपों (दलों) ने ही संघर्ष छेड़ा था, जबकि वर्गों के रूप में सर्वहारा तथा पूँजीपति वर्ग सामने नहीं थे, उन्हें देख पाना कठिन था। लेकिन अब शहर और जिले एक हो गये हैं, सर्वहारा के विभिन्न दलों ने हाथ मिला लिया है, मिली-जुली हड़तालें एवं प्रदर्शन शुरू हो गये हैं और हमारे सामने दो रूसों - पूँजीवादी रूस तथा सर्वहारा रूस - के बीच संघर्ष की शानदार तस्वीर उभर कर सामने आ गयी है। दो विशाल सेनाएँ मैदान में उतर चुकी हैं - सर्वहारा की सेना तथा पूँजीपति वर्ग की सेना - और इन दो सेनाओं के बीच का संघर्ष हमारे समूचे सामाजिक जीवन को समेटे हुए है।

चूँकि कोई सेना नेताओं के बगैर काम नहीं कर सकती और चूँकि हर सेना में एक अग्रिम टुकड़ी होती है जो उसके आगे चलती है और उसका पथ-प्रदर्शन करती है, इसलिए यह स्पष्ट है कि इन सेनाओं के साथ-साथ उनके नेताओं के दल या जैसा कि आमतौर पर उन्हें पुकारा जाता है, उनकी पार्टियों को भी जन्म लेना पड़ेगा।

इस तरह जो तस्वीर उभरती है वह इस प्रकार है: एक ओर तो पूँजीपति वर्ग की सेना है जिसका नेतृत्व लिबरल पार्टी कर रही है। दूसरी ओर सर्वहारा की सेना है जिसका नेतृत्व सोशल-डेमोक्रैट पार्टी कर रही है। प्रत्येक सेना अपने वर्ग संघर्ष में अपनी पार्टी द्वारा संचालित होती है।1

हमने इस सब का ज़िक्र यहाँ इसलिए किया है कि सर्वहारा पार्टी की तुलना सर्वहारा वर्ग से कर सकें और इस प्रकार संक्षेप में पार्टी के सामान्य लक्षणों पर प्रकाश डाल सकें।

उपरोक्त बातों से यह अच्छी तरह स्पष्ट है कि सर्वहारा पार्टी नेताओं का एक जुझारू दल होने के नाते प्रथमत: सदस्यता की दृष्टि से सर्वहारा वर्ग की तुलना में बहुत छोटी होनी चाहिए; दूसरी यह कि वर्ग चेतना और अनुभव की दृष्टि से सर्वहारा वर्ग से श्रेष्ठकर होनी चाहिए; और तीसरे यह कि एक गठा हुआ संगठन होना चाहिए।

हमारे विचार से, जो कुछ कहा गया है, उसे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह स्वत:-स्पष्ट है कि जब तक पूँजीवादी व्यवस्था, जिसके साथ अनिवार्य रूप से जनता की ग़रीबी और पिछड़ापन जुड़ा है, बनी रहेगी तब तक सर्वहारा सामूहिक तौर पर, वर्ग चेतना के आवश्यक स्तर तक नहीं उठ सकता है। इसलिए सर्वहारा की सेना को समाजवाद की भावना से लैस करने के लिए वर्ग-चेतन नेताओं का एक दल होना चाहिए, जोकि उसको एकबद्ध कर सके तथा उसके संघर्ष में नेतृत्व दे सके। यह भी साफ़ है कि एक पार्टी, जोकि युद्धरत सर्वहारा के नेतृत्व के लिए निकलकर आयी है, उसे व्यक्तियों का एक आकस्मिक जमघट नहीं होना चाहिए, वरन एक सुगठित, केन्द्रित संगठन होना चाहिए ताकि उसकी गतिविधियों का निर्देशन एक योजना के अनुसार किया जा सके।

संक्षेप में, यही हमारी पार्टी के सामान्य लक्ष्य हैं।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए आइये मुख्य प्रश्न पर आयें कि हम किसे पार्टी का सदस्य कह सकते हैं? पार्टी नियमावली का पहला पैरा ठीक इसी प्रश्न से सम्बन्धित है जो कि इस लेख का विषय है।

आइये इस प्रश्न पर विचार करें।

तो फिर हम किसे रूस को सोशल-डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी का सदस्य कह सकते हैं - यानि, एक पार्टी सदस्य के कर्तव्य क्या हैं?

हमारी पार्टी एक समाजवादी-जनतांत्रिक पार्टी है। इसका अर्थ है कि इसका अपना एक कार्यक्रम (आन्दोलन के तात्कालिक एवं अन्तिम उद्देश्य) है, अपनी कार्यनीति (संघर्ष का तरीका) है, और अपने संगठनात्मक सिद्धान्त (संगठन का स्वरूप) हैं। कार्यक्रम, कार्यनीति, तथा संगठनात्मक विचारों की एकता वह आधार है, जिस पर हमारी पार्टी बनी है। इन विचारों की एकता ही पार्टी के सदस्यों को एक केन्द्रित पार्टी में बाँध सकती है। यदि विचारों की एकता टूटती है तो पार्टी टूटती है। फलस्वरूप, केवल वह जो पार्टी के कार्यक्रम, कार्यनीति तथा संगठनात्मक सिद्धान्तों को पूर्णतया स्वीकार करता है, उसी को पार्टी सदस्य कहा जा सकता है। केवल वह जिसने हमारी पार्टी के कार्यक्रम, कार्यनीति तथा संगठनात्मक सिद्धान्तों को पर्याप्त रूप से पढ़ा और पूर्णत: स्वीकार किया है, वही हमारी पार्टी की पंक्ति में और इस प्रकार सर्वहारा की सेना के नेताओं की पंक्ति में आ सकता है।

किन्तु क्या एक पार्टी सदस्य के लिए पार्टी का कार्यक्रम, कार्यनीति तथा संगठनात्मक विचारों को केवल स्वीकार करना ही पर्याप्त है? क्या ऐसा व्यक्ति सर्वहारा की सेना का एक सच्चा नेता माना जा सकता है? अवश्य ही नहीं। प्रथम तो हर व्यक्ति यह जानता है कि दुनिया में ऐसे अनेकों बकवास करने वाले लोग हैं जो तुरन्त पार्टी के कार्यक्रम, कार्यनीति तथा संगनात्मक विचारों को "स्वीकार" कर लेंगे, जब कि वे बकवास करने के अतिरिक्त और कुछ करने के योग्य नहीं हैं। ऐसे बकवासी व्यक्ति को पार्टी के सदस्य (यानी कि सर्वहारा की सेना का नेता) कहना तो पार्टी की पूरी गरिमा को नष्ट कर देना होगा। और फिर, हमारी पार्टी कोई दर्शन बघारने की जगह या धार्मिक पंथ तो है नहीं। क्या हमारी पार्टी एक युद्धरत जुझारू पार्टी नहीं है? चूँकि है, अत: क्या यह स्वत:-स्पष्ट नहीं है कि वह सिर्फ अपने कार्यक्रम, कार्यनीति तथा संगठनात्मक सिद्धान्तों की मौखिक स्वीकृति से ही सन्तुष्ट न होगी, कि वह वह बेशक यह माँग करेगीकि उसके सदस्य स्वीकार किये गये सिद्धान्तों को कार्यान्वित करें। अत:, जो भी कोई हमारी पार्टी का सदस्य बनना चाहता है वह केवल हमारी पार्टी के कार्यक्रम, कार्यनीति तथा संगठनात्मक विचारों को स्वीकार कर संतुष्ट नहीं बैठ सकता, वरन उसे इन विचारों को क्रियान्वित करना चाहिए, उन्हें अमल में लाना चाहिए।

किन्तु एक पार्टी सदस्य के लिए पार्टी की नीतियों पर अमल करने का क्या अर्थ है? वह इन नीतियों को कब लागू कर सकता है? केवल तब जब वह लड़ रहा हो, जब वह पूरी पार्टी के साथ सर्वहारा की सेना के आगे चल रहा हो। क्या संघर्ष अकेले, बिखरे हुए व्यक्तियों द्वारा छेड़ा जा सकता है? कभी नहीं। इसके विपरीत पहले जनता एक हो, पहले वे संगठित हों, और उसके बाद ही वे लड़ाई के मैदान में उतरें। यदि ऐसा नहीं किया गया, तो सारा संघर्ष विफल होगा। केवल जब पार्टी के सदस्य एक गठे हुए संगठन सं बँधेंगे, स्पष्टतया तब ही वे लड़ने योग्य और फलस्वरूप पार्टी सिद्धान्तों को लागू करने योग्य हो सकेंगे। यह भी स्पष्ट है कि जिस संगठन में पार्टी सदस्य एकबद्ध हुए हैं वह जितना ही गठीला होगा उतना बेहतर वे लड़ने के योग्य हो सकेंगे और परिणामस्वरूप, उतना ही अधिक वे पार्टी कार्यक्रम, कार्यनीति तथा संगठनात्मक विचारों को लागू कर सकेंगे। यह यूँ ही नहीं है कि हमारी पार्टी को नेताओं का संगठन कहा जाता है न कि व्यक्तियों का जमघट। और चूँकि पार्टी नेताओं का एक संगठन है, अत: यह स्पष्ट है कि केवल वे ही इस पार्टी के, इस संगठन के, सदस्य माने जा सकते हैं, जो इस संगठन में कार्य करते हैं और इसलिए अपनी इच्छाओं का पार्टी की इच्छाओं में विलय तथा पार्टी के साथ एक होकर कार्य करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

अत: पार्टी सदस्य होने के लिए आपको पार्टी के कार्यक्रम, कार्यनीति तथा संगठनात्मक विचारों को लागू करना चाहिए; पार्टी के विचारों को लागू करने के लिए, आपको उनके लिए लड़ना चाहिए; और उन विचारों के लिए लड़ने के वास्ते आपको एक पार्टी संगठन के कार्य करना चाहिए, पार्टी के साथ एक होकर कार्य। स्पष्टतया, एक पार्टी सदस्य होने के लिए, आपको पार्टी के संगठनों में से किसी एक में होना चाहिए।2केवल जब हम पार्टी के संगठनों में से किसी एक में शामिल हो जायें और इस प्रकार अपने व्यक्तिगत हितों को पार्टी के हितों में मिला दें, तभी पार्टी सदस्य बन सकते हैं और फलस्वरूप सर्वहारा की सेना के वास्तविक नेता बन सकते हैं।

यदि हमारी पार्टी फालतू लोगों का जमघट नहीं है, बल्कि ऐसे नेताओं का संगठन है जा कि अपनी केन्द्रीय कमेटी के माध्यम से सर्वहारा की सेना को आगे ले जाने में योग्यतापूर्वक संचालन कर रहे हैं, तो ऊपर जो भी कहा गया है वह स्वत: स्पष्ट हो जायेगा।

निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

अभी तक हमारी पार्टी एक अतिथि-सत्कार करने वाले पितृ-सत्तात्मक परिवार के सदृश्य थी, हर सहानुभूति रखने वाले को लेने को तैयार। किन्तु अब जब हमारी पार्टी एक केन्द्रित संगठन बन चुकी है, उसने अपने पिता समान रूप को छोड़ दिया है और हर प्रकार से एक दुर्ग की तरह हो गयी है, तब उसके दरवाज़े सिर्फ़ उन लोगों के लिए ही खुले हैं जो इस योग्य हैं। यह हमारे लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है।ऐसे समय में जब निरंकुश शासन सर्वहारा की वर्ग चेतना को "ट्रेड-यूनियनवाद", राष्ट्रीयतावाद, पादरीवाद, तथा ऐसी अन्य बातों से दूषित करना चाहता है और जहाँ दूसरी ओर उदारवादी बुद्धिजीवी, सर्वहारा की राजनैतिक स्वतंत्रता की हत्या तथा अपने संरक्षण को उस पर लादने के लिए हठपूर्वक प्रयास कर रहे हैं-ऐसे समय पर हमको अत्यधिक चौकसी रखना चाहिए और यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हमारी पार्टी एक दुर्ग है जिसके दरवाज़े सिर्फ़ उन लोगों के लिए खुले हैं जिनकी परीक्षा हो चुकी है।

हमने यह समझ लिया है कि पार्टी सदस्यता के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं (कार्यक्रम की स्वीकृति तथा एक पार्टी संगठन में कार्य)। यदि इसमें हम तीसरी शर्त और जोड़ दें, कि एक पार्टी सदस्य को आर्थिक सहायता भी प्रदान करनी चाहिए, तो वह सारी शर्तें पूरी हो जायेंगी जो किसी को पार्टी सदस्य के पद का अधिकार देती हैं।

अत:, रूसी सोशल-डेमोक्रैट लेबर पार्टी का सदस्य वह है जो इस पार्टी के कार्यक्रम को मानता है, पार्टी को आर्थिक सहायता प्रदान करता है और पार्टी संगठनों में से किसी एक में कार्य करता है।

इस प्रकार पार्टी निमयावली का प्रथम पैराग्राफ़ तैयार किया गया था, जिसका मसविदा कॉमरेड लेनिन3 ने बनाया था।

यह सूत्र जैसा कि आप देखते हैं, पूर्णतया इस सिद्धान्त से निकलता है कि हमारी पार्टी एक केन्द्रित संगठन है, न कि व्यक्तियों का एक जमघट।

यही इस सूत्र का औचित्य है।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ कॉमरेड लेनिन के इस सूत्र को इस आधार पर अस्वीकार करते हैं कि यह "संकुचित" तथा "असुविधाजनक" है, और अपना एक सूत्र प्रतिपादित करते हैं जो कि ऐसा समझा जाता है कि न तो "संकुचित" है, न ही "असुविधाजनक"। हम मार्तोव4 के सूत्र की बात कर रहे हैं, जिसका कि अब हम विश्लेषण करेंगे।

मार्तोव का सूत्र है: "आर. एस. डी. एल. पी. का सदस्य वह है जो उसका कार्यक्रम स्वीकार करता है, पार्टी की आर्थिक सहायता करता है तथा उसके संगठनों में से एक के निर्देशन में उसे नियमित रूप से व्यक्तिगत सहयोग प्रदान करता है।" जैसा कि आप देखते हैं, यह सूत्र पार्टी की सदस्यता की तीसरी आवश्यक शर्त को छोड़ देता है; यह कि पार्टी सदस्यों का कर्तव्य है कि वे पार्टी संगठनों में से एक में कार्य करें। ऐसा लगता है कि मार्तोव इस निश्चित एवं आवश्यक शर्त को व्यर्थ मानते हैं और उन्होंने अपने सूत्र में इसकी जगह अनर्थक एवं संदिग्ध वाक्य "पार्टी संगठनों में से एक के निर्देशन में व्यक्तिगत सहयोग" रख दिया है। ऐसा लगता है कि बिना किसी पार्टी संगठन के रहते हुए (निश्चय है, सुन्दर "पार्टी" है!) और पार्टी की इच्छा के प्रति समर्पण को कर्तव्य न समझते हुए (निश्चय ही, सुन्दर "पार्टी अनुशासन" है) भी कोई पार्टी का सदस्य हो सकता है। कैसे कोई पार्टी

(पेज 13 पर जारी)

# सर्वहारा वर्ग तथा सर्वहारा की पार्टी

(पेज 12 से आगे)

'नियमपूर्वक' और ठीक तरह से ऐसे व्यक्तियों को निर्देश दे सकती है जो किसी पार्टी संगठन में नहीं है और फलस्वरूप पार्टी अनुशासन के प्रति समर्पण को अपना पूर्ण कर्तव्य नहीं समझते।

यह वो प्रश्न है जो पार्टी नियमावली के प्रथम पैराग्राफ़ के लिए मार्तोव के सूत्र के चिथड़े उड़ा देता है, किन्तु लेनिन के सूत्र में इसका उत्तर बहुत अच्छी तरह से मौजूद है, इस रूप में कि वह निश्चित ही यह मानता है कि पार्टी सदस्यता की तीसरी तथा आवश्यक शर्त यह है कि व्यक्ति को किसी पार्टी संगठन में कार्य करना चाहिए।

हमें बस यही करना है कि मार्तोव के सूत्र से निराकार एवं निरर्थक "पार्टी संगठनों में से एक के निर्देश में व्यक्तिगत सहयोग" को निकाल फेंकना है। इस शर्त के निकलने पर मार्तोव के सूत्र में केवल दो शर्तें बचती हैं (पार्टी कार्यक्रम की स्वीकृति तथा आर्थिक सहायता) जो कि अपने में बिल्कुल मूल्यहीन हैं क्योंकि हर लफ्फाज़ पार्टी कार्यक्रम को 'स्वीकार' कर सकता है और पार्टी को आर्थिक मदद कर सकता है – किन्तु यह ज़रा भी उसे पार्टी सदस्य हाने लायक नहीं बनाती।

हमें मानना होगा, क्या ही "सुविधाजनक" सूत्र है?

हम कहते हैं कि वास्तविक पार्टी सदस्य पार्टी कार्यक्रम को सिर्फ़ मानकर ही शायद आराम से नहीं बैठ सकता है, अपितु बिना चूके उस कार्यक्रम को जिसे उसने स्वीकार किया है, लागू करने का प्रयास करना चाहिए। मार्तोव उत्तर देते हैं: तुम लोग बहुत कठोर हो, क्योंकि एक पार्टी सदस्य के लिए यह बहुत आवश्यक नहीं है कि जिस कार्यक्रम को वह मानता है उसे लागू भी करे, यदि एक वह पार्टी को आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए राजी है, वगैरह। ऐसा लगता है कि मार्तोव कुछ "सोशल-डेमोक्रैट" लफ्फाज़ों को लेकर दुखी हैं और पार्टी के दरवाज़े उनके लिए बन्द नहीं करना चाहते।

और आगे हमारा कहना यह है कि कार्यक्रम के अमल में संघर्ष आवश्यक है और यह कि बिना एकता के संघर्ष असंभव है। इसलिए यह प्रत्येक अपेक्षित सदस्य का कर्तव्य है कि वह पार्टी संगठनों में से किसी एक से जुड़े, अपनी इच्छाओं को पार्टी की इच्छाओं से मिला दे तथा पार्टी के साथ एक सुर होकर सर्वहारा की सेना का नेतृत्व करे, अर्थात् उसे एक केन्द्रित पार्टी की सु-संगठित टुकड़ियों का गठन करना चाहिए। मार्तोव इसका उत्तर देते हैं: पार्टी सदस्यों के लिए सु-संगठित टुकड़ियों में गठित होकर संगठनों में एकबद्ध होना ऐसा आवश्यक नहीं; अकेले लड़ना ही काफी है।

तो, हमारी पार्टी है क्या? हम पूछते हैं व्यक्तियों का एक आकस्मिक जमघट अथवा नेताओं का एक ठोस संगठन? और यदि यह नेताओं का संगठन है तो क्या हम किसी ऐसे को सदस्य मान सकते हैं जो इसमे नहीं है और फलस्वरूप इसके अनुशासन के सामने झुकना अपना कर्तव्य नहीं समझता? मार्तोव उत्तर देते हैं कि पार्टी एक संगठन नहीं, या यूँ कि पार्टी एक असंगठित संगठन है (निश्चय ही, सुन्दर "केन्द्रीयता"!)।

स्पष्ट हो, मार्तोव की राय में हमारी पार्टी एक केन्द्रित संगठन नहीं है बल्कि क्षेत्रीय संगठनों तथा व्यक्तिगत " सोशल-डेमोक्रैट्स", जिन्होंने हमारे पार्टी कार्यक्रम को स्वीकार किया है, इत्यादि का जमघट है। किन्तु यदि हमारी पार्टी केन्द्रित संगठन नहीं है तो यह एक ऐसा दुर्ग न होगी जिसके दरवाज़े केवल मँजे हुए लोगों के लिए ही खुल सकते हैं। और, वाकई, मार्तोव के लिए, जैसा कि उनके सूत्र से ही स्पष्ट है, पार्टी एक दुर्ग नहीं बल्कि एक भोज है, जिसमें प्रत्येक सहानुभूति रखने वाला शामिल हो सकता है। थोड़ी सी जानकारी, उतनी सी ही सहानुभूति, थोड़ी सी आर्थिक सहायता और आप आ गये, आपको पार्टी सदस्य की तरह गिनने का पूरा अधिकार है। मत सुनो – भयभीत "पार्टी सदस्यों" को उत्साहित करने के लिए मार्तोव चीखते हैं – उन लोगों की मत सुनो जो यह कहते हैं कि पार्टी सदस्य को पार्टी संगठनों में से एक में अवश्य होना चाहिए और इस प्रकार अपनी इच्छाओं को पार्टी की इच्छाओं के अधीन कर देना चाहिए। पहले तो, किसी व्यक्ति के लिए इन शर्तों को मानना कठिन है – अपनी इच्छाओं को पार्टी की इच्छाओं के मातहत कर देना कोई मज़ाक नहीं है! और दूसरे, जैसा कि मैं अपनी व्याख्या में पहले ही इंगित कर चुका हूँ, इन व्यक्तियों की राय ग़लत है। और इसलिए, महानुभावों, आपका स्वागत है – भोज के लिए।

ऐसा दिखता है कि मार्तोव कुछ अध्यापकों तथा हाई-स्कूल के छात्रों, जिनको अपनी इच्छाओं को पार्टी की इच्छाओं के अधीन करना अरुचिकर है, के प्रति दुखी हैं और इसलिए वे हमारे पार्टी-दुर्ग में ऐसी झिरी पैदा कर रहे हैं जिससे होकर यह मान्य महानुभाव पार्टी के अन्दर आ सकते हैं। वे अवसरवाद के लिए दरवाज़े खोल रहे हैं, और वह भी ऐसे समय जब हज़ारों दुश्मन सर्वहारा की वर्ग चेतना पर प्रहार कर रहे हैं।

लेकिन बस इतना ही नहीं है। बात यह है कि मार्तोव का यह संदिग्ध सूत्र हमारी पार्टी में अवसरवाद को दूसरी तरह से उभरने की संभावना पैदा करता है।

मार्तोव का सूत्र, जैसा हम जानते हैं, कार्यक्रम को स्वीकारने की बात करता है; कार्यनीति एवं संगठन के बारे में एक शब्द नहीं; और फिर, कार्यनीति एवं संगठन सम्बन्धी विचारों की एकता, पार्टी एकता के लिए कार्यक्रम की एकता से किसी भी तरह कम आवश्यक नहीं है। हमें बताया जा सकता है कि इस पर तो कॉमरेड लेनिन के सूत्र में भी कुछ नहीं कहा गया है। सही है! किन्तु कॉमरेड लेनिन के सूत्र में इस पर कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है। क्या यह स्वयं स्पष्ट नहीं है कि जो किसी पार्टी संगठन में कार्य करता है और फलस्वरूप, पार्टी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ता है तथा पार्टी अनुशासन के आगे झुकता है, वह पार्टी की कार्यनीति तथा पार्टी के संगठनात्मक सिद्धान्तों का पालन कर ही नहीं सकता? पर उस "पार्टी सदस्य" को आप क्या कहेंगे जो पार्टी कार्यक्रम को तो स्वीकार करता है किन्तु किसी पार्टी संगठन में नहीं है? इस बात की क्या गारंटी है कि इस "सदस्य" की कार्यनीति तथा संगठनात्मक विचार वही होंगे जो पार्टी के हैं और कुछ दूसरे नहीं? मार्तोव का सूत्र इसी बात को समझाने में असफल रहता है। मार्तोव के सूत्र के फलस्वरूप हमको यह विलक्षण 'पार्टी' मिलेगी, जिसके सदस्य एक ही 'कार्यक्रम' मानते हैं (और यह भी संदेहास्पद है!), किन्तु अपने कार्यनीति एवं संगठनात्मक विचारों में मतभेद रखते हैं! क्या आदर्शवादी विभिन्नता! हमारी पार्टी किस प्रकार एक भोज से भिन्न होगी?

बस एक प्रश्न है जो हम पूछना चाहेंगे: हमको उस सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक केन्द्रीयतावाद का क्या करना है जो कि दूसरी पार्टी कांग्रेस से हमें मिला था और जिसका कि मार्तोव का सूत्र मौलिक रूप से खण्डन करता है? इसको उठा कर फेंक दें? अगर चुनाव करने की बात है तो निस्संदेह मार्तोव के सूत्र को उठाकर फेंकना अधिक सही होगा।

ऐसा वाहियात है वो सूत्र जो मार्तोव ने कॉमरेड लेनिन के सूत्र के विरोध में पेश किया है।

हमारा विचार है कि दूसरी पार्टी कांग्रेस जिसने कि मार्तोव के सूत्र को माना है, का निर्णय एक गम्भीर ग़लती है और हम आशा करते हैं कि तीसरी पार्टी कांग्रेस दूसरी कांग्रेस की ग़लती को सुधारने में असफल न होगी तथा कॉमरेड लेनिन के सूत्र को अपनायेगी।

हम संक्षेप में दोहरा लें: सर्वहारा की सेना मैदान में आ गयी है, चूँकि हर सेना की एक अग्रिम टुकड़ी होनी चाहिए, इस सेना की भी अग्रिम टुकड़ी होनी है। अत: सर्वहारा के नेताओं का एक ग्रुप सामने आया है – रूस की सोशल-डेमोक्रैट लेबर पार्टी। एक विशेष सेना के अगले दस्ते के रूप में इस पार्टी को पहले तो अपने कार्यक्रम, कार्यनीति तथा संगठनात्मक सिद्धान्त से लैस होना चाहिए; और दूसरे यह एक ठोस संगठन होना चाहिए। इस प्रश्न का कि रूस की सोशल-डेमोक्रैट लेबर पार्टी का सदस्य किसे कहा जा सकता है? इसका सिर्फ़ एक उत्तर हो सकता है: वो जो पार्टी कार्यक्रम मानता है, पार्टी की आर्थिक सहायता करता है, और पार्टी संगठनों में से एक में काम करता है।

यही वो प्रत्यक्ष सत्य है जिसे कॉमरेड लेनिन ने अपने श्रेष्ठ सूत्र में कहा है।

---

1. हमने रूस की अन्य पार्टियों का ज़िक्र नहीं किया है, क्योंकि विचाराधीन प्रश्नों का हल ढूँढने में उनकी कोई आवश्यकता नहीं है।

2. जिस प्रकार हर जटिल जीवाणु अनगिनत सरल जीवाणुओं से मिलकर बनता है, ऐसे ही अपनी पार्टी, एक जटिल तथा सामान्य संगठन होने से, अनेकों जिला तथा क्षेत्रीय विभागों, पार्टी संगठनों से मिलकर बनी है, बशर्ते कि वे पार्टी कांग्रेस अथवा केन्द्रीय कमेटी द्वारा अनुमोदित हों। जैसाकि आप देखते हैं, केवल कमेटियों को ही पार्टी संगठन नहीं कहा जा सकता है। इन संगठनों को एक योजनाबद्ध तरीके से चलाने के लिए एक केन्द्रीय कमेटी होती है, जिसके ज़रिये यह क्षेत्रीय पार्टी संगठन एक विशाल, केन्द्रित संगठन का निर्माण करते हैं।

3. लेनिन, क्रान्तिकारी सोशल-डेमोक्रैसी के एक प्रमुख सिद्धान्तकार एवं व्यावहारिक नेता।

4. मार्तोव, इस्क्रा के संपादकों में से एक।

**(सर्वहारा का संग्राम, अंक 8, 1 जनवरी 1905 में प्रकाशित, बिना हस्ताक्षर के)**

## हम लोहार

● **फ़िलिप श्क्युलोव**

हम लोहार हैं, और हमारी आत्मा है जवान
हम बनाते हैं खुशियों की चाबियाँ।
ऊपर उठते हैं, हमारे मजबूत हथोड़े,
और बजड़ते हैं, फौलादी सीने पर, ठक ठक ठक!

हम कर रहे हैं स्थापित, एक उज्ज्वल पथ,
और निर्मित कर रहे हैं एक स्वतंत्र पथ,
सबके लिए, जो है लम्बे समय से इच्छित।
मिलकर लड़ाइयाँ लड़ी हैं हमने, और हम साथ मरेंगे मरेंगे मरेंगे!

हम लोहार हैं, अपनी प्रिय जन्मभूमि के
हम केवल चाहते हैं, सबकुछ अच्छा,
हम अपनी ऊर्जा व्यर्थ नष्ट नहीं कर रहे हैं,
निरुद्देश्य नहीं चल रहे हमारे हथोड़े, ठक ठक ठक!

और हथोड़े की हर चोट के बाद
धुन्ध छँटेगी, अत्याचार का नाश होगा।
और सारी पृथ्वी के क्षेत्रों के साथ
एक दीन राष्ट्र, उठेगा, उठेगा, उठेगा!

'हम लोहार हैं' यह रूसी गीत उन दिनों बहुत प्रसिद्ध हुआ था जब सोवियत संघ में महान समाजवादी अक्टूबर क्रान्ति अपने चरम पर थी। 1912 ईस्वी में फ़िलिप श्क्युलोव ने इसकी रचना की थी। 14 वर्षीय किशोर फ़िलिप एक ग़रीब दम्पति की सन्तान था जो काम की तलाश में शहर गया। वहाँ उसे एक कारख़ाने में काम मिला लेकिन एक दिन दुर्घटनावश उसका दाहिना हाथ मशीन के अन्दर चला गया और वह बुरी तरह जख्मी हो गया। उन दिनों कारख़ानों में ऐसी दुर्घटनाएँ आम बात थी। पूँजीपति वर्ग मजदूरों के स्वास्थ्य और सुरक्षा के प्रति बिल्कुल बेपरवाह था। इस दुर्घटना के बाद फ़िलिप दो साल तक अस्पताल में पड़ा रहा और उसके बाद फिर काम की खोज में निकल पड़ा। उसने छोटी-सी उम्र में ही कविताएँ लिखना प्रारम्भ कर दिया था, जिसमें उसके एवं मजदूरों के कठिन जीवन की व्यथाओं और इच्छाओं का सजीव चित्रण होता था।

फ़िलिप द्वारा रचित गीत 'हम लोहार' को तात्कालिक रूसी ज़ार सरकार ने प्रतिबन्धित कर दिया था, लेकिन उसके बावजूद यह गीत मज़दूरों के दिलों में गूँजता रहा। सन 1917 से यह गीत मार्गदर्शक के रूप में मज़दूर वर्ग को आत्मबल प्रदान करता रहा एवं उनके संघर्षों के फलस्वरूप महान समाजवादी अक्टूबर क्रान्ति में शोषितों की विजय हुई

**रूसी भाषा से अनुवाद और गीत का परिचय: गौतम कश्यप**

साहित्य का पन्ना

कहानी

# नया क़ानून

## • सआदत हसन मंटो

मंगू कोचवान अपने अड्डे में बहुत अकलमन्द आदमी समझा जाता था, हालाँकि उसकी तालीमी हैसियत सिफर के बराबर थी और उसने कभी स्कूल का मुंह भी नहीं देखा था। लेकिन इसके बावजूद उसे दुनिया भर की चीजों का इल्म था। अड्डे के वह तमाम कोचवान जिनको यह जानने की ख्वाहिश होती थी कि दुनिया के अन्दर क्या हो रहा है, उस्ताद मंगू के व्यापक ज्ञान से अच्छी तरह परिचित थे।

पिछले दिनों उस्ताद मंगू ने अपनी एक सवारी से स्पेन में जंग छिड़ जाने की अफवाह सुनी थी तो उसने गामा चौधरी के चौड़े काँधे पर थपकी देकर गंभीर लहजे से भविष्यवाणी की थी–

"देख लेना चौधरी, थोड़े ही दिनों में स्पेन के अन्दर जंग छिड़ जायेगी।"

और जब गामा चौधरी ने उससे यह पूछा था कि स्पेन कहाँ पड़ता है तो उस्ताद मंगू ने बड़ी संजीदगी से जवाब दिया था,

"विलायत में और कहाँ"?

स्पेन में जंग छिड़ी और जब हर शख्स को इसका पता चल गया तो स्टेशन के अड्डे में जितने कोचवान घेरा बनाकर हुक्का पी रहे थे, दिल ही दिल में उस्ताद मंगू का लोहा मान रहे थे और उस्ताद मंगू उस वक्त माल रोड की चमकीली सतह पर ताँगा चलाते हुए अपनी सवारी से ताजा हिन्दू-मुस्लिम दंगे पर विचार-विमर्श कर रहे थे!

उस रोज शाम के करीब जब वह अड्डे में आया तो उसका चेहरा असाधारण तौर पर तमतमा रहा था। हुक्के का दौर चलते-चलते जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे की बात छिड़ी तो उस्ताद मंगू ने सर पर से खाकी पगड़ी उतारी और बगल में दाब कर बड़े चिंतित स्वर में कहा–

"यह किसी पीर की बददुआओं का नतीजा है कि आये दिन हिन्दुओं और मुसलमानों में चाकू-छूरियाँ चलते रहते हैं और मैंने अपने बड़ों से सुना है कि अकबर बादशाह ने किसी पीर का दिल दुखाया था, उस पीर ने जलकर बददुआ दी थी–

"जा तेरे हिन्दुस्तान में हमेशा फसाद ही होते रहेंगे"–और देख लो जब से अकबर बादशाह का राज खत्म हुआ है–हिन्दुस्तान में फसाद पर फसाद होते रहते हैं"। यह कहकर उसने ठंडी साँस भरी और फिर हुक्के का दम लगाकर अपनी बात शुरू की,

"ये कांग्रेसी हिन्दुस्तान को आजाद करना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि अगर ये लोग हजार साल भी सर पटकते रहें तो कुछ न होगा। बड़ी से बड़ी बात यह होगी कि अंग्रेज चला जायेगा और कोई इटली वाला आ जायेगा। या वह रूस वाला जिसके बारे में मैंने सुना है कि बहुत तगड़ा आदमी है, लेकिन हिन्दुस्तान सदा गुलाम रहेगा। हाँ, मैं यह कहना भूल ही गया कि पीर ने यह बददुआ भी दी थी कि हिन्दुस्तान पर हमेशा बाहर के आदमी राज करते रहेंगे।"

उस्ताद मंगू को अंग्रेजों से बड़ी नफरत थी, इस नफरत का सबब तो वह यह बतलाया करता था कि वो उसके हिन्दुस्तान पर अपना सिक्का चलाते हैं और तरह-तरह के जुल्म ढाते हैं। मगर उसकी घृणा की सबसे बड़ी वजह यह थी कि छावनी के गोरे उसे बहुत सताया करते थे। वो उसके साथ कुछ ऐसा सुलूक करते थे गोया वह जलील कुत्ता हो। इसके अलावा उसे उनका रंग भी बिल्कुल पंसद नहीं था। जब किसी गोरे के सुर्ख व सफेद चेहरे को देखता तो उसे मतली सी आ आती। न मालूम क्यों वह कहा करता था कि उनके लाल झुर्रियों भरे चेहरे देखकर मुझे वह लाश याद आ जाती है, जिसके जिस्म पर से ऊपर की झिल्ली गल-गल कर सड़ रही हो।

जब किसी शराबी गोरे से उसका झगड़ा हो जाता तो सारा दिन उसका जी खराब रहता और शाम को अड्डे में आकर वह हल मार्का सिगरेट पीता या हुक्के के कश लगाते हुए उस गोरे को जी भरकर सुनाया करता।

"....." यह मोटी गाली देने के बाद वह अपने सर को ढीली पगड़ी समेत झटका देकर कहा करता था,

"आग लेने आये थे, अब घर के मालिक ही बन गये हैं। नाक में दम कर रखा है इन बन्दरों की औलादों ने, यूं रोब गाँठते हैं, जैसे हम उनके बाबा के नौकर हैं...।"

इस पर भी उसका गुस्सा ठंडा नहीं होता था। जब तक उसका कोई साथी उसके पास बैठा रहता, वह अपने सीने की आग उगलता रहता।

"शक्ल देखते हो न तुम उसकी–जैसे कोढ़ हो रहा है। बिल्कुल मुर्दार, एक धप्पे की मार और गिट-पिट-गिट-पिट यों बक रहा था, जैसे मार ही डालेगा। तेरी जान की कसम, पहले पहल जी में आया उस गोरे बदख्वार की खोपड़ी के पुर्जे उड़ा दूं लेकिन इस ख्याल से टल गया कि इस मरदूद को मारना अपनी हतक है..." यह कहते-कहते वह थोड़ी देर के लिए खामोश हो जाता और नाक को खाकी कमीज की आस्तीन से साफ करने के बाद फिर बड़बड़ाने लग जाता–

"कसम है भगवान की इन लाट साहबों के नाज उठाते-उठाते तंग आ गया हूँ। जब कभी इनका मनहूस चेहरा देखता हूँ, रगों में खून खौलने लग जाता है। कोई नया क़ानून-वानून बने तो इन लोगों से निजात मिले। तेरी कसम जान में जान आ जाये।"

और जब एक रोज उस्ताद मंगू ने कचहरी से अपने ताँगे पर दो सवारियाँ लादीं और उनकी गुफ्तगू से उसे पता चला कि हिन्दुस्तान में नया संविधान लागू होने वाला है तो उसकी खुशी की हद न रही।

दो मारवाड़ी जो कचहरी में अपने दीवानी मुकदमे के सिलसिले में आये थे, घर जाते हुए नये संविधान यानी इण्डिया ऐक्ट के बारे में आपस में बातें कर रहे थे।

"सुना है कि पहली अप्रैल से हिन्दुस्तान में नया क़ानून चलेगा–क्या हर चीज बदल जायेगी"

"हर चीज तो नहीं बदलेगी मगर कहते हैं कि बहुत कुछ बदल जायेगा और हिन्दुस्तानियों को आजादी मिल जायेगी।"

"क्या ब्याज के बारे में भी कोई नया क़ानून पास होगा?"

"यह पूछने की बात है, कल किसी वकील से बात करेंगे।"

इन मारवाड़ियों की गुफ्तगू उस्ताद मंगू के दिल में नाकाबिले बयान खुशी पैदा कर रही थी। वह अपने घोड़े को हमेशा गालियाँ देता था और चाबुक से बहुत बुरी तरह पीटा करता था। मगर उस रोज वह बार-बार पीछे मुड़कर मारवाड़ियों की तरफ देखता रहा और अपनी बढ़ी हुई मूंछों के बाल एक उंगली से बड़ी सफाई के साथ ऊंचे करके घोड़े की पीठ पर बागें ढीली करते हुए बड़े प्यार से कहता,

"चल बेटा चल–जरा इसे बातें करके दिखा दे।"

मारवाड़ियों को उनके ठिकाने पहुंचा कर उसने अनारकली में दीनू हलवाई की दुकान पर आधा सेर दही की लस्सी पी कर एक बड़ी डकार ली और मूंछों को मुंह में दबाकर उनको चूसते हुए ऐसे ही बुलन्द आवाज में कहा,

"हत तेरी ऐसी की तैसी"

शाम को जब वह अड्डे को लौटा तो मामूल के ख़िलाफ़ उसे वहाँ कोई जान-पहचान वाला आदमी नहीं मिला। यह देखकर उसके सीने में एक अजीबोगरीब तूफान मचलने लगा। आज वह एक बड़ी खबर अपने दोस्तों को सुनाने वाला था–बहुत बड़ी खबर, और इस खबर को अपने अन्दर से बाहर निकालने के लिए वह छटपटा रहा था, लेकिन वहाँ कोई था ही नहीं।

आधे घंटे तक वह चाबुक बगल में दबाये स्टेशन के अड्डे की लोहे की छत के नीचे बैचेनी की हालत में टहलता रहा, उसके दिमाग में बड़े अच्छे-अच्छे ख्यालात आ रहे थे। नये क़ानून के लागू होने की खबर ने उसको एक नई दुनिया में ला खड़ा किया था। वह उस नये क़ानून के बारे में, जो पहली अप्रैल को हिन्दुस्तान में रायज होने वाला था, अपने दिमाग की तमाम बत्तियाँ रौशन करके, गहराई से सोच रहा था। उसके कानों में मारवाड़ी की यह आशंका कि,

"क्या ब्याज के बारे में भी कोई नया क़ानून पास होगा?"

बार-बार गूंज रहा था और उसके तमाम जिस्म में खुशी की एक लहर दौड़ रही थी, कई बार अपनी घनी मूंछों के अन्दर हंस कर उसने मारवाड़ियों को गाली दी...

"गरीबों की खटिया में घुसे हुए खटमल–नया क़ानून इनके लिये खौलता हुआ पानी होगा"

वह बहुत प्रसन्न था। खासकर उस वक्त उसके दिल में ठंडक पहुंचती जब वह ख्याल करता कि गोरों–सफेद चूहों (वह उनको इसी नाम से याद करता था) की थूथनियाँ नये क़ानून के आते ही बिलों में हमेशा के लिए गायब हो जायेंगी।

जब नन्हू गंजा, पगड़ी बगल में दबाये अड्डे में दाखिल हुआ तो उस्ताद मंगू उससे बढ़कर मिला और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बुलन्द आवाज से कहने लगा,

"ला हाथ इधर... ऐसी खबर सुनाऊं कि जी खुश हो जाये–तेरी इस गंजी खोपड़ी पर बाल उग आयें।"

और यह कहकर मंगू ने बड़े मजे ले-लेकर नये क़ानून के बारे में अपने दोस्तों से बातें शुरू कर दीं। बातचीत के दौरान उसने कई बार नत्थू गंजे के हाथ पर जोर से अपना हाथ मार कर कहा,

"तू देखता रह, क्या बनता है, यह रूस वाला बादशाह कुछ न कुछ जरूर करके रहेगा।"

उस्ताद मंगू मौजूदा सोवियत व्यवस्था की साम्यवादी गतिविधियों के बारे में बहुत कुछ सुन चुका था और उसे वहाँ के नये क़ानून और दूसरी नई चीजें बहुत पंसद थीं। इसीलिए उसने रूस वाले बादशाह को "इण्डिया ऐक्ट" यानी नये संविधान के साथ मिला दिया और पहली अप्रैल को जो नये परिवर्तन होने वाले थे, उन्हें वह "रूस वाले बादशाह" के असर का नतीजा समझता था। कुछ अर्से से पेशावर और दूसरे शहरों में "सुर्ख पोशों" का आन्दोलन जारी था। उस्ताद मंगू ने इस आन्दोलन को अपने दिमाग में "रूस वाले बादशाह" और फिर नये क़ानून के साथ घुला-मिला दिया था। इसके अलावा जब कभी वह किसी से सुनता कि फलाँ शहर में इतने बम बनाने वाले पकड़े गये हैं, या फलाँ जगह इतने लोगों पर बगावत के आरोप में मुकदमा चलाया गया है तो इन तमाम घटनाओं को नये क़ानून की पूर्वपीठिका समझता और दिल ही दिल में बहुत खुश होता था। एक दिन उसके ताँगे में दो बैरिस्टर बैठे नये क़ानून पर बड़े जोर-जोर से आलोचना कर रहे थे और वह खामोशी से उनकी बातें सुन रहा था। उनमें से एक, दूसरे से कह रहा था–

"नये विधान का दूसरा हिस्सा फैडरेशन है, जो मेरी समझ में अभी तक नहीं आया–ऐसी फैडरेशन संसार के इतिहास में आज तक न सुनी, न देखी गई। राजनैतिक दृष्टिकोण के हिसाब से भी यह फैडरेशन बिल्कुल गलत है, यों कहना चाहिए कि यह कोई फैडरेशन है ही नहीं।"

इन बैरिस्टरों के दरम्यान जो वार्ता हुई, चूंकि उसमें अधिकांश शब्द अंग्रेजी के थे, इससे उस्ताद मंगू सिर्फ ऊपर के ही वाक्य को किसी हद तक समझा और उससे धारणा बनाई कि ये लोग हिन्दुस्तान में नये क़ानून की आमद को बुरा समझते हैं। ये नहीं चाहते कि हमारा वतन आजाद हो। चुनांचे इस विचार के तहत उसने इन दो बैरिस्टरों को हिकारत की निगाह से देखकर मन ही मन कहा, "टोडी बच्चे।"

जब कभी वह किसी को दबी जबान में "टोडी बच्चा" कहता तो दिल में यह महसूस करके बड़ा प्रसन्न होता था कि उसने इस नाम को सही जगह इस्तेमाल किया है और यह कि वह शरीफ आदमी और टोडी बच्चे में भेद करने की क्षमता रखता है।

इस घटना के तीसरे दिन वह गवर्नमेंट कालेज के तीन छात्रों को अपने ताँगे में बिठाकर मिजंग जा रहा था कि उसने इन तीन लड़कों को आपस में बातें करते सुना,

"नये संविधान ने मेरी उम्मीदें बढ़ा दी हैं, अगर... साहब असेम्बली के मेम्बर हो गये तो किसी सरकारी आफिस में नौकरी जरूर मिल जायेगी।"

(पेज 14 से आगे)

"वैसे भी बहुत सी जगहें और निकलेंगी, शायद इसी गड़बड़ में हमारे हाथ भी कुछ आ जाये"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं।"

"वो बेकार ग्रेजुएट जो मारे-मारे फिर रहे हैं, उनमें कुछ तो कमी होगी"

इस वार्तालाप ने उस्ताद मंगू के मन में नये क़ानून की अहमियत और भी बढ़ा दी और वह उसको ऐसी चीज समझने लगा जो बहुत चमकती हो, "नया क़ानून...?" वह दिन में कई बार सोचता "यानी कोई नई चीज" और हर बार उसकी नजरों के सामने अपने घोड़े का वह नया साजोसामान आ जाता जो उसने दो साल पहले चौधरी खुदाबख़्श से बड़ी अच्छी तरह ठोंक-बजाकर खरीदा था। उस साज पर जब वह नया था, जगह-जगह लोहे की निकिल चढ़ी हुई कीलें चमकती थीं और जहाँ-जहाँ पीतल का काम था वह तो सोने की तरह दमकता था। इस लिहाज से भी "नये क़ानून" का चमकदार व रौशन होना जरूरी था।

पहली अप्रैल तक उस्ताद मंगू ने नये क़ानून के ख़िलाफ़ और उसकी हिमायत में बहुत कुछ सुना मगर उसके बारे में जो तस्वीर वह अपने जेहन में बना चुका था, बदल न सका। वह समझता कि पहली अप्रैल को नये क़ानूनों के लागू होते ही सब गड़बड़ ठीक हो जायेगी और उसको विश्वास था कि उसकी आमद पर जो चीज़ें नजर आयेंगी उनसे आँखों को ठंडक जरूर पहुंचेगी।,

आखिरकार मार्च के इक्तीस दिन खत्म हो गये और अप्रैल के शुरू होने में रात के चन्द खामोश घंटे बाकी रह गये थे। मौसम ख़िलाफ़ेमामूल सर्द था और हवा में ताजगी थी। पहली अप्रैल को उस्ताद मंगू सुबह-सवेरे उठा और अस्तबल में जाकर घोड़े को ताँगे में जोता और बाहर निकल गया। उसकी तबियत आज गैरमामूली तौर पर खुशी व जोश से भरी हुई थी-वह नये क़ानून को देखने वाला था। उसने सुबह के सर्द धुंधलके में कई तंग और खुले बाजारों का चक्कर लगाया मगर उसे हर चीज पुरानी नजर आई-आसमान की तरह पुरानी। उसकी आँखें आज खास तौर पर नया रंग देखना चाहती थीं, मगर सिवाये उस कलगी के जो रंग बिरंगे परों से बनी थीं और उसके घोड़े के सर पर जमी हुई थी और सब चीजें पुरानी नजर आती थीं। यह नई कलगी उसने नये क़ानून की खुशी में 31 मार्च को चौधरी खुदाबख़्श से साढ़े चौदह आने में खरीदी थी।

घोड़े के टापों की आवाज, काली सड़क और उसके आस-पास थोड़ा-थोड़ा फासला छोड़कर लगाये हुए बिजली के खंभों, दुकानों के बोर्ड, उसके घोड़े के गले में पड़े हुए घुंघरू की झनझनाहट, बाजार में चलते-फिरते आदमी... इनमें से कौन सी चीज नई थी। जाहिर है कि कोई भी नहीं। लेकिन उस्ताद मंगू मायूस नहीं था।

"अभी बहुत सवेरा है, दुकानें भी सब की सब बन्द हैं" इस ख़्याल से उसे तसकीन थी। इसके अलावा वह यह भी सोचता था "हाईकोर्ट में तो नौ बजे के बाद ही काम शुरू होता है। अब इससे पहले नये क़ानून का क्या नजर आयेगा।"

जब उसका ताँगा गवर्नमेंट कालेज के दरवाजे के करीब पहुंचा तो कालेज के घड़ियाल ने बड़े गर्व से नौ बजाये। जो छात्र कालेज के बड़े गेट से बाहर निकल रहे थे, साफ सुन्दर कपड़े पहने हुए थे, मगर उस्ताद मंगू को न जाने क्यों उनके कपड़े मैले-मैले से नजर आये। शायद इसकी वजह यह थी कि उसकी निगाहें आज किसी बहुत जोरदार दृश्य का नजारा करने वाली थीं।

ताँगे को दायें मोड़कर वह थोड़ी देर के बाद फिर अनारकली में था। बाजार की आधी दुकानें खुल चुकी थीं और अब लोगों का आना-जाना भी बढ़ गया था। हलवाई की दुकान पर ग्राहकों की खूब भीड़ थी। मनिहारों की नुमाइशी चीजें शीशे की अलमारियों में लोगों को दर्शन का निमंत्रण दे रही थीं और बिजली के तारों पर कई कबूतर आपस में लड़-झगड़ रहे थे। मगर उस्ताद मंगू के लिए इन तमाम चीजों में कोई दिलचस्पी न थी-वह तो नये क़ानून को देखना चाहता था। ठीक उसी तरह जिस तरह वह अपने घोड़े को देख रहा था।

जब उस्ताद मंगू के घर में बच्चा पैदा होने वाला था तो उसने चार-पाँच महीने बड़ी व्याकुलता में गुजारे थे। उसको यकीन था कि बच्चा किसी न किसी दिन अवश्य पैदा होगा, मगर वह इंतजार की घड़ियाँ नहीं काट सकता था। वह चाहता था, अपने बच्चे को सिर्फ एक नजर देख ले, उसके बाद वह पैदा होता रहे। चुनांचे इसी पराजित इच्छा के तहत उसने कई बार अपनी बीमार बीवी के पेट को दबाकर और उसके ऊपर कान रख-रखकर अपने बच्चे के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहा था। मगर नाकाम रहा था, एक दफा वह इंतजार करते-करते इस कदर तंग आ गया था कि अपनी बीवी पर भी बरस पड़ा था-

"तू हर वक्त मुर्दे की तरह पड़ी रहती है, उठ जरा चल-फिर, तेरे अंग में थोड़ी सी ताकत तो आये, यों तख्ता बने रहने से कुछ न हो सकेगा। तू समझती है, इस तरह लेटे-लेटे बच्चा जन देगी।"

उस्ताद मंगू स्वभाव से बहुत जल्दबाज था। वह हर सबब की अमली तशकील देखने का न सिर्फ ख़्वाहिशमन्द था बल्कि जिज्ञासु था। उसकी बीवी गंगावती, उसकी इस किस्म की बेकरारी को देखकर आमतौर पर यह कहा करती थी-

"अभी कुंआ खोदा नहीं गया और तुम प्यास से बेहाल हो रहे हो।"

कुछ भी हो मगर मंगू उस्ताद नये क़ानून की प्रतीक्षा में उतना व्याकुल नहीं था जितना कि उसे अपने स्वभाव के हिसाब से होना चाहिए था। वह आज नये काननू को देखने के लिए घर से निकला था, ठीक उसी तरह जैसे गाँधी जी या जवाहरलाल के जुलूस का नजारा करने के लिए निकलता था। लीडरों की महानता का अन्दाजा उस्ताद मंगू हमेशा उनके जुलूस के हंगामों और उनके गले में डाले हुए फूलों के हारों से किया करता था। अगर कोई लीडर गेंदें के फूलों से लदा हुआ हो तो उस्ताद मंगू के निकट वह बड़ा आदमी था और अगर किसी लीडर के जुलूस में भीड़ की वजह से दो-तीन फसाद होते-होते रह जायें तो उसकी दृष्टि में वह और भी बड़ा था। अब नये क़ानून को वह अपने जेहन के इसी तराजू पर तौलना चाहता था। अनारकली से निकलकर वह माल रोड की चमकीली सतह पर अपने ताँगे को आहिस्ता-आहिस्ता चला रहा था। मोटरों की दुकान के पास उसे छावनी की एक सवारी मिल गई। किराया तय करने के बाद उसने अपने घोड़े को चाबुक दिखाया और सोचा-

"चलो यह भी अच्छा हुआ-शायद छावनी ही से नये क़ानून का कुछ पता चल जाये।"

छावनी पहुंचकर उस्ताद मंगू ने सवारी को उसकी मंजिल पर उतार दिया और सिगरेट निकाल कर बाएं हाथ की आखिरी दो उंगलियों में दबा कर सुलगायी और पिछली सीट पर बैठ गया-जब उस्ताद मंगू को किसी सवारी की तलाश नहीं होती थी या उसे किसी बीती हुई घटना के बारे में सोचना होता वह आम तौर पर अगली सीट छोड़कर पिछली सीट पर बड़े इत्मीनान से बैठकर अपने घोड़े की बागें अपने दायें हाथ के गिर्द लपेट लिया करता था। ऐसे मौकों पर उसका घोड़ा थोड़ा सा हिनहिनाने के बाद बड़ी धीमी चाल चलना शुरू कर देता था। जैसे उसे कुछ देर के लिए भाग-दौड़ से छुटी मिल गई है।

घोड़े की चाल और उस्ताद मंगू के दिमाग में ख़्यालात की आमद बहुत सुस्त थी। जिस तरह घोड़ा आहिस्ता-आहिस्ता कदम उठा रहा था, उसी तरह उस्ताद मंगू के जेहन में नये क़ानून के सम्बन्ध में नये अन्दाजे दाखिल हो रहे थे।

वह नये क़ानून की मौजूदगी में म्युनिस्पल कमेटी से ताँगों के नम्बर मिलने के तरीके पर विचार कर रहा था। नये क़ानून में कैसे मिलेंगे नम्बर...? वह सोच में डूबा हुआ था कि उसे यों महसूस हुआ जैसे उसे किसी सवारी ने आवाज दी है। पीछे पलट कर देखने से उसे सड़क के एक तरफ दूर बिजली के खंभे के पास एक "गोरा" खड़ा नजर आया, जो उसे हाथ से बुला रहा था।

जैसा कि बयान किया जा चुका है, उस्ताद मंगू को गोरों से सख़्त नफरत थी, जब उसने अपने ताजा ग्राहक को गोरे की शक्ल में देखा तो उसके दिल में नफरत के भाव भड़क उठे। पहले उसकी इच्छा हुई कि उसकी तरफ किंचित ध्यान न दे और उसको छोड़कर चला जाये मगर बाद में उसके मन में आया कि इनके पैसे छोड़ना भी तो नादानी है। कलगी पर जो मुफ्त में साढ़े चौदह आने खर्च कर दिये हैं, इनकी ही जेब से वसूल करना चाहिए। चलो चलते हैं..."

खाली सड़क पर बड़ी सफाई से ताँगा मोड़कर उसने घोड़े को चाबुक दिखाया और एक क्षण में वह बिजली के खंभे के पास था। घोड़े की बागें खींच कर उसने ताँगा रोका और पिछली सीट पर बैठे-बैठे गोरे से पूछा।

"साहब बहादुर कहाँ जाना माँगटा है?"

इस सवाल में बेपनाह व्यंग्य था। साहब बहादुर कहते वक़्त उसका ऊपर का मूंछों भरा होंठ नीचे की तरफ खिंच गया और पास ही गाल के इस तरफ जो मद्धम सी लकीर नाक के नुथने से ठोड़ी के ऊपरी भाग तक चली आ रही थी, एक कम्पन्न के साथ गहरी हो गई। जैसे किसी ने नुकीले चाकू से शीशम की साँवली लकड़ी में धारी डाल दी हो। उसका सारा चेहरा हंस रहा था और अपने अन्दर उसने उस "गोरे" को छाती की आग में जलाकर भस्म कर डाला था।

जब गोरे ने जो बिजली के खंभे की ओट में हवा का रुख बचाकर सिगरेट सुलगा रहा था, मुड़कर ताँगे के पायदान की तरफ कदम बढ़ाया तो अचानक उस्ताद मंगू और उसकी निगाहें चार हुईं और ऐसा महसूस हुआ उस क्षण एक साथ आमने-सामने की बन्दूकों से गोलियाँ निकल पड़ी हों और आपस में टकराकर आग का एक गोला बनकर ऊपर को उड़ गयीं।

उस्ताद मंगू जो अपने दायें हाथ से लगाम के बल खोलकर ताँगे पर से नीचे उतरने वाला था, अपने सामने खड़े "गोरे" को यों देख रहा था गोया वह उसके वजूद के कण-कण को अपनी निगाहों से चबा रहा है और गोरा कुछ इस तरह अपनी पतलून पर से कुछ न दिख सकने वाली चीज़ें झाड़ रहा था, गोया वह उस्ताद मंगू के इस हमले से अपने वजूद के कुछ हिस्से सुरक्षित रखने की कोशिश कर रहा है।

गोरे ने सिगरेट का धुंआ निगलते हुए कहा-"जाना माँगटा या फिर गड़बड़ करेगा?"

"वही है" उस्ताद मंगू के जेहन में शब्द गूंजे और उसकी चौड़ी छाती के अन्दर नाचने लगे।

"वही है" उसने शब्द अन्दर ही अन्दर दोहराये और साथ ही उसे पूरा यकीन हो गया कि वह गोरा जो उसके सामने खड़ा था वही है, जिससे पिछले बरस उसकी झड़प हुई थी और उस फालतू के झगड़े में, जिसका सबब गोरे के दिमाग में चढ़ी हुई शराब थी, उसे मजबूरन न चाहते हुए भी बहुत सी बातें सहनी पड़ी थी। उस्ताद मंगू ने गोरे का दिमाग दुरुस्त कर दिया होता बल्कि उसके पुर्जे उड़ा दिये होते मगर वह किसी खास कारण से खामोश हो गया था। उसको मालूम था कि इस किस्म के झगड़ों में अदालत का फैसला आम तौर पर कोचवानों के ख़िलाफ़ होता है।

उस्ताद मंगू ने पिछले बरस की लड़ाई और पहली अप्रैल के नये क़ानून पर गौर करते हुए गोरे से कहा, "कहाँ जाना माँगटा है?"

गोरे ने जवाब दिया, "हीरामंडी।"

"किराया पाँच रुपये होगा?" उस्ताद मंगू की मूंछें थरथराईं।

यह सुनकर गोरा हैरान हो गया, वह चिल्लाया, "पाँच रुपये, क्या तुम...?"

"हाँ, हाँ, पाँच रुपये" यह कहते हुए उस्ताद मंगू का दाहिना बालों भरा हाथ भींच कर एक वजनी घूंसे की शक्ल इख़्तियार कर गया।

"क्यों.... जाते हो या बेकार बातें बनाओगे?"

उस्ताद मंगू का लहजा सख़्त हो गया,

गोरा पिछले साल की घटना को याद करके उस्ताद मंगू की छाती की चौड़ाई नजरअन्दाज कर चुका था, वह सोच रहा था कि इसकी खोपड़ी लगता है फिर खुजला रही है। इस उत्साह बढ़ाने वाले विचार के तहत वह ताँगे की तरफ अकड़ कर बढ़ा और अपनी छड़ी से उस्ताद मंगू को ताँगे पर से नीचे उतरने का इशारा किया, पालिश की हुई बेंत की छड़ी उस्ताद मंगू की मोटी जाँघ के साथ दो-तीन मर्तबा टकराई। उसने खड़े-खड़े ऊपर से पस्त कद के गोरे को देखा, गोया वह अपनी दृष्टि के भार से ही उसे पीस डालना चाहता है। फिर उसका घूंसा कमान में से तीर की तरह ऊपर को उठा और पलक झपकते ही गोरे की ठुड्ढी के नीचे जम गया। धक्का देकर उसने गोरे को परे हटाया और नीचे उतरकर उसे धड़ाधड़ पीटना शुरू कर दिया।

हैरान-चकित गोरे ने इधर-उधर सिमट कर उस्ताद मंगू के वजनी घूंसों से बचने की कोशिश की और जब देखा कि उस पर दीवानगी की हालत जारी है और उसकी आँखों से चिंगारियाँ बरस रही हैं, तो उसने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। इस चीख-ओ-पुकार ने उस्ताद मंगू की बाहों का काम भी तेज कर दिया, वह गोरे को जी भर के पीट रहा था और साथ-साथ कहता जाता था-

"पहली अप्रैल को भी वही अकड़ क्यूं-पहली अप्रैल को भी वहीं अकड़ क्यूं-अब हमारा राज है बच्चा।"

लोग जमा हो गये और पुलिस के दो सिपाहियों ने बड़ी मुश्किल से गोरे को उस्ताद मंगू की गिरफ़्त से छुड़ाया, उस्ताद मंगू उन दो सिपाहियों के बीच खड़ा था। उसकी चौड़ी छाती फूली हुई साँस की वजह से ऊपर नीचे हो रही थी। मुंह से झाग बह रहा था और अपनी मुस्कुराती हुई आँखों से विस्मय में डूबे वहाँ जमा लोगों की तरफ देख कर वह हाँफती हुई आवाज में कह रहा था-

"वो दिन गुजर गए जब खलील खाँ फाख़्ता उड़ाया करते थे-अब नया क़ानून है मियाँ-नया क़ानून।"

और बेचारा गोरा अपने बिगड़े चेहरे के साथ मूर्खों की तरह कभी उस्ताद मंगू की तरफ देखता था, कभी हुजूम की तरफ, उस्ताद मंगू को पुलिस के सिपाही थाने ले गये, रास्ते में और थाने के अन्दर कमरे में वह, "नया क़ानून", "नया क़ानून" चिल्लाता रहा, मगर किसी ने एक न सुनी।

"नया क़ानून-नया क़ानून" "क्या बक रहे हो-क़ानून वही है पुराना।"

और उसको हवालात में बन्द कर दिया गया।

●

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

## नरेन्द्र मोदी की नेपाल यात्रा

# हिन्दू दिलों और बुर्जुआ दिमागों को छूकर चीन से होड़ में आगे निकलने की क़वायद

पिछली 3-4 अगस्त के बीच सम्पन्न नरेन्द्र मोदी की दो दिवसीय नेपाल यात्रा को भारत और नेपाल दोनों ही देशों की बुर्जुआ मीडिया ने हाथों हाथ लिया। एक ऐसे समय में जब घोर जनविरोधी नव-उदारवादी नीतियों की वजह से त्राहि-त्राहि कर रही आम जनता में "अच्छे दिनों" के वायदे के प्रति तेजी से मोहभंग होता जा रहा है, मोदी ने नेपाल यात्रा के दौरान सस्ती लोकप्रियता अर्जित करने वाले कुछ हथकण्डे अपनाकर अपनी खोयी साख वापस लाने की कोशिश की। अपनी यात्रा के पहले दिन मोदी ने नेपाल की संसद/संविधान सभा में सस्ती तुकबन्दियों, धार्मिक सन्दर्भों और मिथकों से सराबोर एक लंबा भाषण दिया जिसे सुनकर ऐसा जान पड़ता था मानो एक बड़ा भाई अपने छोटे भाई को अपने पाले में लाने के लिए पुचकार रहा हो और उसकी तारीफ़ के पुल बाँध रहा हो। हीनताबोध के शिकार नेपाल के बुर्जुआ राजनेता इस तारीफ़ को सुन फूले नहीं समा रहे थे। यात्रा के दूसरे दिन मोदी ने पशुपतिनाथ मन्दिर के दर्शन के ज़रिये भारत और नेपाल दोनों देशों में अपनी छवि 'हिन्दू हृदय सम्राट' के रूप में स्थापित करने के लिए कुछ धार्मिक एवं पाखण्डपूर्ण टिटिम्मेबाजी की। बुर्जुआ मीडिया भला इस सुनहरे अवसर को कैसे छोड़ सकती थी! मोदी के शपथ ग्रहण समारोह के बाद यह पहला ऐसा मौका था जब उसे एक बार फिर से मोदी की लोकप्रियता का उन्माद खड़ा करने के लिए मसाला मिला और उसने उसे जमकर भुनाया और अपनी टीआरपी बढ़ायी। नेपाली मीडिया में भी मोदी की नेपाल यात्रा को नेपाल के लोगों के दिल और दिमाग को छू लेने वाला बताया। इस बात में अर्धसत्य है कि मोदी ने नेपाल के लोगों के दिलो-दिमाग को छुआ, पूरी सच्चाई यह है कि दरअसल मोदी ने हिन्दू दिलों और बुर्जुआ दिमागों को छुआ।

मीडिया की मसालेदार व चटखदार ख़बरों को भेदकर मोदी की इस यात्रा का असली मक़सद जानने की कोशिश करने पर यह साफ़ दिखता है कि यह यात्रा दक्षिण एशिया में भारत की चौधराहट क़ायम करने की मोदी सरकार की विदेश नीति के तहत नेपाल में ऊर्जा, परिवहन और संचार के क्षेत्रों में होड़ में चीन को पीछे छोड़ने कवायद का हिस्सा थी। ग़ौरतलब है कि मोदी ने अपने शपथ ग्रहण समारोह में दक्षेस के सभी राष्ट्राध्यक्षों को आमंत्रित किया था। उसके बाद मोदी ने अपनी पहली विदेश यात्रा के लिए भूटान को चुना। भूटान और नेपाल के अतिरिक्त बांगलादेश, म्यांमार एवं श्रीलंका आदि को भी कुछ रियायतें देकर मोदी सरकार दक्षिण एशिया में भारत की चौधराहट क़ायम करना चाहती है और साथ ही इन देशों से आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाकर अपनी खस्ताहाल अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाना चाह रही है। नेपाल की बात करें तो भारत और चीन दोनों ही देशों के पूँजीवादी शासक वर्ग पिछले कई वर्षों से नेपाल में पनबिजली परियोजनाओं, सड़क एवं रेल निर्माण एवं संचार के क्षेत्रों में पूँजी निवेश करके अपने-अपने हितों के अनुरूप नेपाल के विकास की दिशा नियन्त्रित करना चाह रहे हैं। भारत के विदेश नीति विशेषज्ञ लंबे समय से यह कहते आये हैं कि यदि भारत इस दिशा में त्वरित फैसले नहीं लेगा तो वह इस दौड़ में चीन से पिछड़ जायेगा। इसी के मद्देनज़र मोदी सरकार ने यह फैसला किया है नेपाल से एक बार फिर शीर्ष स्तर पर राजनीतिक और कूटनीतिक सम्बन्धों में प्रगाढ़ता लाकर अपने हित साधे जायें। ये विशेषज्ञ इस बात के लिए मोदी की तारीफ़ करते नहीं अघा रहे हैं कि पिछले 17 सालों में की यात्रा करने वाले पहले प्रधानमन्त्री हैं। लेकिन ये कलमघसीट यह नहीं बताते कि इन 17 सालों में नेपाल के प्रति भारत नेपाल में क्या गुल खिलाता रहा है। सच तो यह है कि इन 17 सालों में भारत ने शीर्ष स्तर की वार्तायें इसलिए नहीं कीं क्योंकि इस दौरान नेपाल में जारी जनयुद्ध और उसके बाद संविधान निर्माण की प्रक्रिया में भारत ने वहाँ अपने अधिकारियों एवं गुप्तचरों के ज़रिये नेपाल की अन्दरूनी राजनीति में दख़लन्दाजी करके अपने हितों को साधने का घृणित प्रयास किया। इन 17 सालों में हस्तक्षेपवादी नीति लागू करने के बाद प्रधानमन्त्री की यात्रा इसलिए हुई क्योंकि अब भारत के शासक वर्ग को यह लगने लगा है कि यदि शीर्ष स्तर पर औपचारिक सम्बन्ध बहाल करके विकास की योजनाओं को तेजी से नहीं लागू किया जायेगा तो नेपाल में चीन की पैठ बहुत बढ़ जायेगी।

मोदी की यात्रा के दौरान महाकाली नदी पर बनने वाली 5600 मेगावाट वाली पंचेश्वर बहुउद्देशीय परियोजना को शुरू करने पर समझौता हुआ। यह योजना एक दशक से भी ज़्यादा समय से अधर में लटकी हुई थी। ज्ञात हो कि नेपाल में तेज़ प्रवाह वाली 6000 से भी ज़्यादा नदियों के होने की वजह से वहाँ जलविद्युत उत्पादन की प्रचुर संभावनाएँ हैं। नेपाल की मौजूदा विद्युत उत्पादन क्षमता 600 मेगावाट है जबकि विशेषज्ञों के मुताबिक वहां संभावित विद्युत उत्पादन क्षमता 40,000 मेगावाट से भी अधिक है। अभी नेपाल को 150 मेगावाट बिजली भारत से आयात करनी पड़ती है। जलविद्युत परियोजनाओं की यह प्रचुर संभावना नेपाल में भारत और चीन के बीच होड़ का सबसे बड़ा कारण है क्योंकि दोनों ही देशों की पूँजीवादी सत्ताओं को अपनी अर्थव्यवस्थाओं को निर्बाध रूप से चलाने के लिए बिजली की सख़्त ज़रूरत है। चीन त्रिशुली नदी पर 60 मेगावाट की तथा सेती नदी पर 750 मेगावाट की जलविद्युत परियोजना विकसित कर रहा है। भारत की टाटा पावर, लैंको, जीएमआर, जिन्दल, एल एंड टी और जेंको जैसी कंपनियों ने नेपाल में जलविद्युत परियोजनाओं को विकसित करने के ठेके प्राप्त किये हैं, हालाँकि उन पर काम अभी नहीं शुरू हो सका है। करनाली नदी पर जीएमआर ग्रुप को 900 मेगावाट कर परियोजना विकसित करने का ठेका 2008 में ही मिला था, लेकिन स्थानीय लोगों के विरोध के कारण वह अभी तक नहीं शुरू हो सकी है। इसके अतिरिक्त मरस्यांगदी नदी पर बनने वाली 600 मेगावाट की परियोजना में भी जीएमआर की 82 प्रतिशत हिस्सेदारी है। मोदी की यात्रा के दौरान एक बिजली व्यापार समझौते पर भी दस्तख़त की योजना थी, परन्तु उसके ठीक पहले नेपाल के जल संसाधन विशेषज्ञों ने इस समझौते के मसौदे पर यह कहकर आपत्ति जतायी कि यदि नेपाल उस पर दस्तख़त करता है तो वह जलविद्युत के उत्पादन के लिए पूरी तरह से भारत पर निर्भर हो जायेगा। इस विवाद के उठने की वजह से यह समझौता इस यात्रा के दौरान नहीं लागू हो सका। नेपाल के बुद्धिजीवी हलकों में भी जलविद्युत परियोजनाओं को लेकर काफी उत्साह है और वे इस क्षेत्र में भारत और चीन दोनों से सौदेबाजी करने की वकालत करते हैं। लेकिन वे विकास की इस अंधी होड़ से होने वाली पर्यावरण की तबाही के बारे में कुछ भी नहीं बोलते। मोदी की यात्रा के ठीक पहले नेपाल के सिंधुपालचोक में कोसी नदी पर एक भीषण भूस्खलन हुआ जिससे वहाँ बड़े पैमाने पर तबाही हुई। यहाँ तक कि बिहार में भी बाढ़ आने का ख़तरा मंडराने लगा था। यह सर्वविदित है कि पिछले कुछ वर्षों में हिन्दुकुश-हिमालय बेल्ट में आयी प्राकृतिक आपदाओं (मसलन 2010 में हुंजा घाटी में आयी आपदा, 2013 में उत्तराखंड आपदा एवं इस साल मई में अफ़गानिस्तान में बदख्शां आपदा और अब नेपाल के सिंधुपालचोक में आयी आपदा) की मुख्य वजह अंधाधुंध पूँजीवादी विकास एवं बड़ी जलविद्युत परियोजनाएँ रही हैं। ऐसे में नेपाल में जलविद्युत परियोजनाओं को विकसित करने के लिए भारत और चीन के बीच जारी होड़ हिमालय के नाजुक पारिस्थितिक तंत्र पर निश्चय ही विपरीत असर डालेगा और इस पूरे क्षेत्र में भूस्खलन, बाढ़ और सूखे जैसी आपदाओं की संभावना बढ़ जायेगी।

**इस बात में अर्धसत्य है कि मोदी ने नेपाल के लोगों के दिलो-दिमाग को छुआ, पूरी सच्चाई यह है कि दरअसल मोदी ने हिन्दू दिलों और बुर्जुआ दिमागों को छुआ। मीडिया की मसालेदार व चटखदार ख़बरों को भेदकर मोदी की इस यात्रा का असली मक़सद जानने की कोशिश करने पर यह साफ़ दिखता है कि यह यात्रा दक्षिण एशिया में भारत की चौधराहट क़ायम करने की मोदी सरकार की विदेश नीति के तहत नेपाल में ऊर्जा, परिवहन और संचार के क्षेत्रों में होड़ में चीन को पीछे छोड़ने कवायद का हिस्सा थी।**

नेपाल में भारत और चीन के बीच होड़ ऊर्जा के अतिरिक्त व्यापार एवं परिवहन व संचार जैसे अवरचनागत क्षेत्रों में भी है। विशेषकर वर्ष 2007 के बाद से चीन ने नेपाल में बेतहाशा पूँजी निवेश किया है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के मामले में चीन ने भारत को पीछे छोड़ दिया है। चीन ने हिमालय के क्षेत्र में सड़कों का जाल बिछाकर नेपाल और चीन के बीच आवागमन में सुविधा के लिए काठमांडू और नेपाल-चीन सेवा के बीच अरानिको हाइवे एवं नेपाल के स्याफ्रूबेसी तथा तिब्बत के केरूंग के बीच 20 मिलियन डालर की लागत वाली सड़क योजना में निवेश किया है। हलाँकि भारत ने भी तमाम अवरचनागत परियोजनाओं को विकसित करने का वायदा किया है, परन्तु उनके क्रियान्यवयन की रफ़्तार बेहद धीमी रही है जिसकी वजह से भारत चीन से पिछड़ता हुआ दिखायी पड़ रहा है। यही वजह थी कि मोदी ने नेपाल की संसद/संविधान सभा में अपने भाषण के दौरान नेपाल को 'हिट' (हाइवे, आईवे, ट्रांसवे) करने का शिगूफ़ा छोड़ा। साफ़ है कि चीन और भारत दोनों ही नेपाल को 'हिट' कर रहे हैं और नेपाल का बुर्जुआ वर्ग इन दोनों 'हिटों' का खुशी-खुशी स्वागत भी कर रहा है। मोदी ने नेपाली बुर्जुआ वर्ग को खुश करने के लिए आसान दरों पर 1 बिलियन डालर (10 हज़ार करोड़ नेपाली रुपये) के कर्ज़ का भी वायदा किया। इसके अतिरिक्त मोदी ने नेपाली छात्रों की छात्रवृत्ति बढ़ाने का, हर्बल मेडिसिन पर शोध में मदद करने का तथा नेपाल व भारत के बीच फोन दरों को सस्ता करने का भी वायदा किया। साथ ही मोदी ने दक्षिण एशिया में शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में सहयोग कि लिए एक सार्क सैटेलाइट छोड़ने का भी वायदा किया।

नेपाल में चीन की बढ़ती दख़ल को टक्कर देते हुए मोदी ने भारत की ओर से नेपाल को रियायतों का तोहफ़ा तो दिया ही, साथ ही साथ पुराने सांस्कृतिक-ऐतिहासिक सम्बन्धों का हवाला देकर नेपाल की भारत से क़रीबी भी दिखायी। अपने भाषण में मोदी ने ऐतिहासिक तथ्यों एवं धार्मिक मिथकों का घालमेल करके एवं नेपाल की तारीफ़ के पुल बाँधकर नेपाल को अपनी ओर खींचने का प्रयास साफ़ दिखायी पड़ा। मसलन मोदी नेपाल को सीता की जन्मस्थली बताया और इस धार्मिक मिथक का जिक्र एक ऐतिहासिक तथ्य की तरह किया कि जब लक्ष्मण मूर्छित हो गये थे तब हनुमान संजीवनी बूटी लेने के लिए नेपाल आये थे। हद तो तब हो गयी जब एक धर्मनिरपेक्ष देश का प्रधानमंत्री होने का दावा करने वाले इस शख़्स ने अपनी हिन्दू पहचान को खुलेआम भुनाकर नेपाल के हिन्दुओं का तुष्टीकरण करने की बेशर्म कोशिश की। अपने भाषण में मोदी ने ज़िक्र किया कि अपनी राजनीतिक यात्रा में वह गुजरात के सोमनाथ से काशी विश्वनाथ होते हुए अब पशुपतिनाथ आये हैं। यही नहीं यात्रा के दूसरे दिन मोदी ने भगवा वस्त्र धारण कर, चंदन का टीका लगाकर तथा रूद्राक्ष की माला पहनकर पशुपतिनाथ मंदिर का दर्शन किया जिसे दोनों देशों की मीडिया ने खूब प्रचारित किया। । भारत के एक जाने-माने विदेश-नीति विशेषज्ञ ने उचित ही मोदी की इस यात्रा को 'राजनीतिक तीर्थयात्रा' की संज्ञा दी। मोदी की यात्रा योजनाबद्ध तरीके से सावन के अन्तिम सोमवार के दिन रखी गयी थी ताकि वे अपने धार्मिक वेषभूषा एवं पाखंडपूर्ण हावभाव से दोनों देशों के हिन्दू हृदयों को छू सकें। पशुपतिनाथ मंदिर में मोदी ने बासुकी पूजा और रूद्राभिषेक किया जो अब तक सिर्फ़ नेपाल के राजा का ही विशेषाधिकार था। नेपाल की राजशाही के कूड़ेदान में फेंके जाने के बाद नये 'हिन्दू हृदय सम्राट' को इस विशेषाधिकार से नवाजा जाना कत्तई आश्चर्यजनक नहीं है। इस विशेषाधिकार से अभिभूत होकर मोदी ने पशुपतिनाथ मंदिर को 2500 किलो चन्दन दान दिया और वहाँ धर्मशाला बनवाने के लिए 25 करोड़ रुपये भी भेंटस्वरूप दिये।

( पेज 10 पर जारी )

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006